श्री काशी-खण्ड

अध्याय १ से ५

अगस्त्य ऋषि तथा विन्ध्याचल

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गंगां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥

लेखक

वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

नमः शिवाय

'विश्वनाथाष्टकम्'

गङ्गातरङ्गरमणीयजटाकलापं गौरीनिरन्तरविभूषितवामभागम् ।
नारायणप्रियमनङ्गमदापहारं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥
वाचामगोचरमनेकगुणस्वरूपं वागीशविष्णुसुरसेवितपादपीठम् ।
वामेन विग्रहवरेण कलत्रवन्तं वाराणसी० ॥

(शेष कवर पृष्ठ ३ पर)

श्री काशी-खण्ड

(अध्याय १ से ५)

अगस्त्य ऋषि

तथा

विन्ध्याचल

लेखक

वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

हर हर महादेव

बाबा 'विश्वनाथ' के प्रतीक, काशिराज महाराज
'श्रीविभूतिनारायण सिंहजी'
को
सादर समर्पित
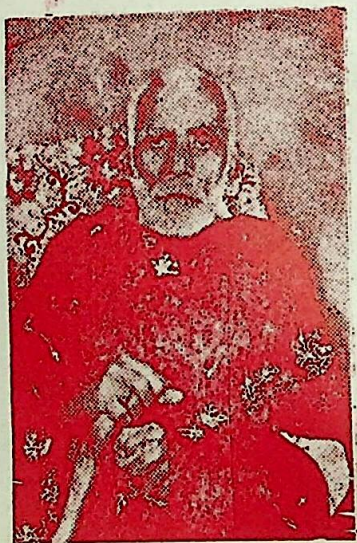
काशी के गौरव वेदमूर्त्ति
विद्वच्छिरोमणि शास्त्ररत्नाकर पद्मभूषण पण्डितराज
श्रीराजेश्वर शास्त्री द्राविड़

आमुख

एक बार 'जलगाँव' में एक मन्दिर की मूर्ति किसी प्रकार भंग हो गई थी। वहाँ के लोग उसे जल में प्रवाहित कर उसके स्थान पर नयी मूर्ति रख उसका जीर्णोद्धार करना चाहते थे। परन्तु वहीं के एक प्रसिद्ध सज्जन इसके विरुद्ध थे कि नहीं उसी खण्डित मूर्ति की पूजा होनी चाहिये। इस विवाद के निवारण के लिए मुझे वहाँ बुलाया गया।

प्रश्न आने पर मैंने 'शास्त्रवचनों' का समर्थन करते हुए और वहाँ की परिस्थिति के अनुसार कहा शास्त्र का मत है कि सर्व लक्षण युक्त, सुन्दर मूर्ति का दर्शन एवं अर्चन करना चाहिए। ऐसा करने से दर्शक के ऊपर उस मूर्ति का वैसा ही लक्षण और प्रभाव पड़ता है और उसके माध्यम से उसके परिवार के अन्य लोगों पर भी वैसी ही छाप पड़ती है।

इसी प्रकार ऋतु-स्नान के पश्चात् साध्वा स्त्री सर्व-प्रथम अपने पतिदेव का दर्शन करना चाहती है जिससे, उससे होनेवाली सन्तति पर उसके पति की छाप पड़े। दैववशात् यदि पति के दर्शन नहीं हो पाते तो वह किसी 'देवी' या 'देवता' का दर्शन करती है ताकि उनका प्रभाव उसकी सन्तान पर पड़े। इसी कारण खण्डित-मूर्ति को जल में छिपाकर रखने का विधान है, अन्यथा आगे की सन्तति के अपंग होने का भय रहता है।

शास्त्र मर्यादा का पालन तथा देवता के अर्चन में मानसिक रोगों को हटाने का सामर्थ्य है। क्रोध से विवेक शून्य होना विलासिता, निद्रा की अधिकता, आलस्य, मूढ़ता, अधिक घूमना आदि लक्षण मानस रोग के हैं। इनकी अभिवृद्धि से देश में मंगल या उसकी भक्ति कथमपि नहीं हो सकती। इन रोगों को दूर करने

के लिए आयुर्वेद में आस्तिक्य आदि उपाय बतलाये गये हैं जो कि सात्विकता के पोषक हैं—

> आस्तिक्यं प्रविभज्य भोजनमनुत्तापश्च तथ्यं वचः
> मेधा बुद्धि धृति क्षमाश्च करुणा ज्ञानं च निर्दम्भता
> कर्मानिन्दितमस्पृहं च विनयो धर्मः सदैवादरात्
> एते सत्त्वगुणान्वितस्य मनसो गीतागुणाज्ञानिभिः ।

आस्तिक्य का स्वभाव है कि देव, ऋषि, पितृ, मनुष्य, अतिथि, परिवार, सर्व-साधारण प्राणी आदि को अर्जित संपत्ति में से यथायोग्य बाँटकर अवशिष्ट अंश का भोग करना, चित्त में उद्वेग न करना, सत्यभाषण, मेधा, बुद्धि, धृति, क्षमा, करुणा, अदांभिकता, तथा इनके अतिरिक्त उपाय योजना आस्तिक्य भाव में यही होगी जो कि निन्दा का पात्र नहीं हो सकती। इसी में सच्चा कल्याण तथा देश भक्ति अन्तर्निहित है। पवित्रात्माओं के जीवन का यही उपयोग है। इसी में नित्य श्री-नित्य मंगलम् की रचना है।

इस प्रकार मानसिक रोग दूर कराने में आस्तिक्य भाव को बढ़ाने के लिए ऋषियों ने प्रयत्न किया है। उसी में से काशीखण्ड भी एक है।

पहले लोग देवमन्दिरों में समाज का कल्याण चाहने वाली उत्तम कथाओं को कथावाचकों से सुनकर अपने तथा अपने परिवार व समाज के रूप को तद्रूप बनाते थे। अब लोगों को उतना कष्ट उठाने का अवसर नहीं रहा और फलतः उतने कथावाचक भी सुलभ नहीं रहे।

ऐसी स्थिति में 'काशी' में स्थित देवी-देवताओं की तथा उनके स्थानों की और उनके दर्शनों से प्राप्त होने वाले कल्याणकारी फलों की कथा, जो 'स्कन्दपुराण' के "काशी-खण्ड" में वर्णित है, सर्व-सुलभ करने की ओर श्री वैकुण्ठनाथ उपाध्याय का यह द्वितीय प्रयास है।

तीर्थों की पूजा तपस्वीजन करते हैं तीर्थों में महान् कष्ट भोगने का भाव यही होता है कि जिसके जैसे कर्म होते हैं वैसा भोग उसे भगवान् को प्राप्त करने के लिए भोगना पड़ता है। यदि वह भगवान का भक्त है, नित्य उनकी सेवा, पूजा, दर्शन करता है, तो उसे भगवान् सहज ही प्राप्त होते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

प्रस्तुत पुस्तक घर-घर में रखने योग्य है। क्योंकि नीतिशास्त्र के 'लोक-संग्रह' प्रकरण में कहा गया है कि—'शुचिरास्तिक्यपूतात्मा पूजयेद् देवताः सदा' अर्थात् पूजा करने वाला पवित्र हो और अस्तिक भावान्वित हो, तो आपेक्षिक लोक संगठन सिद्ध होगा।

इसी लिए पवित्र तीर्थ स्थानों में सनातनियों की बहुत बड़ी-बड़ी सभाएँ होती हैं, जैसे—'कुम्भ', काशी का 'नाटी इमली' का भरत-मिलाप, 'तुलसीघाट की नागनथैया, जैसे मेलों में जिसमें राजा-महारजा आदि पधार कर अपने को पवित्र समझते हैं तथा सम्मान को प्राप्त करते हैं।

भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना है कि श्री वैकुण्ठनाथजी पर वह सदा वरदहस्त रखें और उन्हें शक्ति-प्रदान करें कि वह सम्पूर्ण 'काशी-खण्ड' इसी प्रकार लिख सकें !

श्रीराजेश्वरशास्त्री द्राविड़

निवेदन

काशी की महिमा का वर्णन जितना भी किया जाय थोड़ा है। इसे 'आनन्दवन' एवं 'वाराणसी' नाम से भी जाना जाता है। इसकी महिमा का वर्णन स्वयं भगवान् 'विश्वनाथ' ने एक समय भगवती 'पार्वती जी' से किया था, जिसे उनके पुत्र कार्तिकेय जी ने अपनी माँ की गोदी में बैठे-बैठे सुना था। उसी महिमा का वर्णन अगस्त्य ऋषि से कार्तिकेय जी ने किया और वही कथा 'स्कन्द पुराण' के अन्तर्गत 'काशीखण्ड' में वर्णित है।

जिस काशी की महिमा का वर्णन देवाधिदेव 'महादेव' ने तथा 'विष्णु' भगवान् ने स्वयं किया है उसे हम सबको भी पढ़ना चाहिये और उसका हमें ज्ञान होना चाहिए।

काशी की वर्तमान दशा का वर्णन किस मुँह से किया जाय समझ में नहीं आता। आप सब स्वयं देख व समझ लें। सम्भव है कि मैं लिखने में अधिक संकोच कर रहा हूँ, "इसके लिए मेरी त्रुटियों को क्षमा करेंगे। जो कुछ इस पुस्तक में 'कथा प्रसंग' के अतिरिक्त लिखा गया है उसे उन-उन स्थानों पर स्वयं जाकर देखा है और वृद्धजनों से पूछा भी है, वही बातें लिख रहा हूँ। इसमें अपनी ओर से कुछ भी नहीं लिखा है। जो कुछ भी लिखा हूँ, वर्वमान काशी को देखकर अपनी अन्तर्वेदना व्यक्त की है। यदि इससे तथा इसमें वर्णित कथा से आप सबका कुछ लाभ अथवा भला हो सके तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

आज काशी का स्वरूप क्या है, उसकी दशा क्या है उसके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है आदि पर विचार करना अति आवश्यक है। आज हम देखते हैं कि काशी में कुछ सौ मन्दिरों में तो जल, अक्षत, बताशा 'इलायचीदाना' लड्डू, पेड़ा, ठोकवा, सांठ और कहीं केवल बिल्वपत्र मात्र चढ़ता है परन्तु हजारों मन्दिर ऐसे हैं जहाँ के देवी-देवता, अव्यवस्था और समाज की उपेक्षा के कारण हीन-दीन दशा में पड़े हैं। मालूम होता है, कि इस सबका प्रकोप ही हमें नाना

कष्टों को दे रहा है। हमने नहीं, हमारे पूर्वज, सिद्ध, सन्त–महात्माओं ने इन्हें सादर स्थापित किया था। जबतक वे रहे तबतक इनकी सेवा-पूजा की और सुख भोगकर मरने पर वे तो मोक्ष के अधिकारी हुए इसमें कोई सन्देह नहीं, पर उनके इष्टदेव की आज यह दुर्दशा वस्तुतः हम सबके लिए डूब मरने की बात है। इन उपेक्षित मन्दिरों के रख-रखाव तथा पूजा-अर्चना की व्यवस्था हम सबको मिलकर करनी है। 'काशीवासी' को तो सेवा करनी ही है क्योंकि वे यहाँ के देवी-देवताओं के ड्योढ़ीदार हैं पर समस्त सनातनधर्मी एवं आस्तिक लोगों का, चाहे वे भारत में हों अथवा विदेशों में उनका सहयोग प्राप्त हुए बिना यह कार्य सम्पन्न होना असम्भव है।

इसी उपेक्षा के परिणाम-स्वरूप कितने देव-मन्दिर लुप्त हो गये, उनकी मूर्तियाँ लुप्त हो गयीं, उन्हें आज पूछने पर कोई बतलाने वाला नहीं बचा कि वे मन्दिर, कुण्ड, बावली व कूप कहाँ गये। यदि यही स्थिति रही तो जो कुछ बचे-खुचे हैं वे सब भी नष्ट हो जायेंगे और अगले ५० या १०० वर्षों में इन्हें भी कोई बतलाने वाला न रहेगा।

यह साधारण-सी समझ की बात है कि जब देवी और देवताओं की पूजा-आरती से उनका हम सत्कार नहीं कर सकते तो फिर वे हमारी क्यों चिन्ता करने लगे? यदि हम उनके स्थानों की सुरक्षा नहीं कर सकते तो हमारे रहने का ठिकाना कौन लगा सकता है? हर व्यक्ति को चाहिए कि अपनी कमाई में से अधिक नहीं तो १ या २ प्रतिशत ही निकालकर इस कार्य के निमित्त अर्पण करें।

अनेक धनी-मानी या श्रद्धालु जन कार्य कर रहें हैं परन्तु इस दिशा में आज हम सबको सोचना, समझना और करना पड़ेगा, तभी उक्त पुण्य कार्य में हम लग सकेंगे और भगवान् का हमें आशीर्वाद प्राप्त होगा। हम, हमारा परिवार, हमारे इष्ट मित्र सदा सुखी रहेंगे।

चारो पुरुषार्थों में धर्म, अर्थ, काम तो हर स्थान पर कर्म करने पर मिलता है परन्तु अन्तिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' तो काशी में ही सहज में मिलता है। यह अकाट्य सत्य है। ऐसी काशी को 'मोक्ष' देनेवाली 'काशी' बनाना हमारा

कार्य है । इसे बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली नहीं बनने देना चाहिए । यहाँ के लोगों को 'शिव' या 'श्याम' का प्रेमी होना चाहिए, सिनेमा प्रेमी नहीं, क्योंकि यही तो सर्वनाश कर रहा है । काशी के आध्यात्मिक गौरव का रक्षण करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है ।

'काशी' प्रकाशिका है । यहीं समस्त भक्तों एवं भगवत् प्रेमियों को पूर्णता का अनुभव हुआ है अतः यहाँ के निवासियों को अपने पर विचार करना होगा । उन्हें गंगा स्नान और देवमन्दिर का दर्शन करना होगा, तभी हृदय का मल स्वच्छ होगा, हम एक-दूसरे से प्रेम का पाठ सीखेंगे, इन देवी-देवताओं के मन्दिरों के सत्संग से ।

काशी में 'परमार्थ' का व्यापार चलता है जहाँ हर व्यवसाय की उन्नति की ओर हम ध्यान दे रहे हैं वहीं इस 'परमार्थ' के व्यापार को भी बनाये रखें । इसके लिए परम आवश्यकता है उसे समझने की । अत: 'काशी' क्या है ? इसके किस भाग की क्या महत्ता है ? इसके किस कोने का क्या महत्त्व है ? इसका रहस्य और तत्त्व क्या है ? यदि इसे हम जानना और समझना चाहते हैं तो हमें निश्चय ही 'स्कन्द-पुरण' के अन्तर्गत वर्णित 'काशीखण्ड' तथा ब्रह्मवैर्त्त-पुराणान्तर्गं 'काशी रहस्य' को पढ़ना पड़ेगा । जब तक इन ग्रन्थों को हम पढ़ेंगे नहीं, उसमें वर्णित स्थानों को देखेंगे नहीं, उसके रहस्यों को समझेंगे नहीं, कि कौन 'देव' या 'देवी' किस स्थान पर क्यों हैं: वहीं पर उनके निवास करने का क्या रहस्य है, आदि बातों को समझेंगे नहीं, तब तक उक्त बातों का उत्तर मिलना असम्भव होगा ।

फलतः आधुनिक ढंग से 'काशीखण्ड' को भाषा में सर्व सुलभ करने का संकल्प लेकर यह द्वितीय प्रयास कर रहा हूं ।

'काशीखण्ड' में १०० अध्याय हैं तथा ११,००० से ऊपर श्लोक हैं । इसका प्रकाशन एक साथ करना सम्भव नहीं रहा, अधिक परिश्रम एवं व्यय साध्य समझ सम्पूर्ण को अंश-अंश कर प्रकाश में लाना ही मैंने उचित समझा है ।

इस भाग से पूर्व अध्याय ५६ व ६० को कथा से संबंधित भाग 'प्रबोधिनी एकादशी' को प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत भाग में 'काशीखण्ड' के प्रथम अध्याय से पांच अध्याय तक की कथा का वर्णन किया गया है। इस वर्णन के पढ़ने से हमारा ज्ञान वर्धन होगा, आत्मा प्रसन्न होगी, हमारे परिवार के लोगों को इससे उत्तम सीखें मिलेंगी, दान-धर्म की ओर हमारी रुचि बढ़ेगी, गऊ तथा ब्राह्मणों के प्रति हममें श्रद्धा उत्तपन्न होगी; हम आपस के ईर्ष्या आदि अनिष्टकारी तत्वों को त्यागने में सक्षम होंगें। सबसे बड़ी बात जो इस पुस्तक से होगी वह यह कि हमारे 'नारी वर्ग' का बहुत बड़ा कल्याण होगा। यदि 'नारी वर्ग इस पुस्तक में वर्णित, 'पातिव्रत' को बातों को अपना लें और तदनुसार आचरण भी करने लगें तो हमें पूर्ण विश्वास है कि उनका इह लोक और परलोक तो बनेगा साथ ही उनसे उत्पन्न होने वाली भावी सन्तान का बहुत बड़ा कल्याण होगा।

हमारे समाज में 'गृहस्थाश्रम' सर्वोपरि 'आश्रम' माना गया है। 'ब्रह्मचर्याश्रम', 'वानप्रस्थाश्रम' और 'सन्यासाश्रम' इन तीनों के पोषण (पालन) का भार इसी गृहस्थाश्रम पर निर्भर रहता है। गृहस्थाश्रम में 'पत्नी' को 'मूल' (बीज) माना गया है। पत्नी के बिना कोई मनुष्य गृहस्थ नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में हम यह मानने को बाध्य हो रहे हैं कि पत्नी की पवित्रता पर सारा खेल निर्भर करता और उसमें यह पवित्रता का अंकुर उसके माता-पिता उसके बाल्य-काल से ही ऐसी कथाओं की शिक्षा के माध्यम से उत्पन्न कर सकते हैं।

भगवान 'विश्वनाथ' का वरदहस्त तथा आप सबका सहयोग एवं स्नेह सदा बना रहेगा। यही भाव हृदय में रख आप सबकी सेवा करना मैंने अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा है। आशा है आप सबका आशीर्वाद प्राप्त होगा।

—वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

धन्यवाद

श्रीमन्महाराज काशीराज के हम चिर ऋणि रहेंगे, जो उन्होंने इस पुस्तक का भी अपने करकमलों द्वारा प्रकाशनोद्घाटन करना स्वीकार कर हमें पुनः कृतार्थ किया।

हम प्रातःस्मरणीय वेदमूर्ति पण्डितराज श्री राजेश्वर शास्त्री द्राविड़ को प्रणाम करते हुए प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार उन्होंने हमें मार्ग दर्शाया है उसी प्रकार से उनकी कृपा सदा बनी रहेगी।

इसके पश्चात् हम प्रातःस्मरणीय श्री १००८ स्वामी श्री करपात्री जी महाराज को, महामहोपाध्याय पद्मभूषण पण्डित गोपीनाथ कविराज जी को दण्डवत करता हूँ जिन्होंने हमारे पूर्व प्रकाशन को तथा हमारी सम्पूर्ण काशीखण्ड के प्रकाशन की योजना को आशीर्वाद दिया।

सर्व श्री पं० जनार्दनशास्त्री पाण्डेय, पं० माधव शास्त्री, पं० विश्वनाथ शास्त्री दातार, डा० भानुशंकर मेहता का हम विशेष रूप से आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने पाण्डुलिपि को शुद्ध करने में तथा मुद्रण की अशुद्धियों को ठीक कराने में पूर्ण सहयोग दिया है। छपाई कार्य में श्री प्रमोद कुमार तथा श्री काली प्रसाद, श्री प्रेस को धन्यवाद देता हूँ। रेखा चित्रों के निर्माता तरुण चित्रकार श्री अरुण क्षीरसागर को बधाई देता हूँ तथा छवि चित्रकार (फोटोग्राफर) श्री शत्रुघ्न व्यास को धन्यवाद देता हूँ।

इस अवसर पर मैं जंगमवाड़ी के महन्तश्री' को विशेष रूप से प्रणाम करूंगा जिन्होंने मठ संबंधो जानकारी देने की कृपा की। साथ ही हम श्री मकुन्दलाल जी सर्राफ, श्री झींगन साहू, को बधाई देता हूँ जिन्होंने विशेष कृपा कर हमें प्रकाशन कार्य में उत्साहित किया।

पं० सुधाकर पाडेय, श्री नन्दलाल जी प्रह्लादका, श्री मुरारीलाल जी केडिया, पं० काशीनाथ पाण्डेयव्यास, पं० राजनारायण शास्त्री, डा० रामधारी दूबे, श्री हरिराम पाडिया जी, श्री मदनलाल जी को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपनी बहुमुल्य सम्मति प्रदान की है तथा हमें उत्साहित किया है।

विषय-सूची

———

चित्र-सूची

———

भगवान 'श्रीकृष्ण' की 'योगमाया'

भगवती 'विन्ध्यवासिनी देवी'

नमः शिवाय
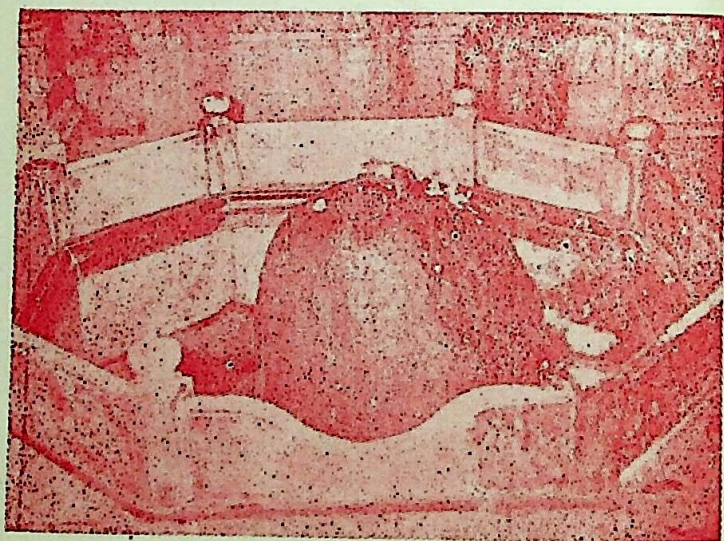
श्री अगस्त्य ऋषि द्वारा स्थापित

श्री 'अगस्त्येश्वर महादेव

❋ श्रीगणेशाय नमः ❋

अध्याय १

विन्ध्याचल की वृद्धि

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥

भगवान् श्री महादेव-पार्वती के प्रियपुत्र गजेन्द्रमुख (हाथी का मुख है जिनका), तीनों प्रकार के ताप से रहित, सुप्रसिद्ध महाप्रभु गणाधिराज गणेशजी को सर्वप्रथम प्रणाम करना आवश्यक है।

"जो भूतल पर रहते हुए भी स्वयं भूमि नहीं है। जो अधोभाग में होते हुए भी स्वर्ग के ऊपर ही रहती है। भूमण्डल से आवद्ध होने पर भी सदा मुक्तिदान करती है, वहाँ जाने पर जो पुनः लौटते नहीं वे जीव (प्राणी) मात्र परमपद 'मोक्ष' को प्राप्त कर लेते हैं, जो तीनों लोक को पवित्र करने वाली गंगा के तट पर है और जिसकी देवता लोग सदा सेवा किया करते हैं वही त्रिपुरान्तक भगवान विश्वनाथ की राजधानी 'श्रीकाशी' अज्ञानरूपी विपत्तियों से जगत् की रक्षा करे। जिस परमात्मा के सृष्टि रूप में स्थिति-प्रलय रूप सन्ध्या के व्याज से ब्रह्मा विष्णु और रुद्र निरन्तर गमनागमन करते रहते हैं उस महेश्वर भगवान विश्वनाथ को मैं सदा नमस्कार करता हूँ।"

अठारह 'पुराण' के रचयिता, सत्यवतीनन्दन व्यास जी, सूत जी

से समस्तपातकों का नाश करने वाली "काशी खण्ड" की कथा इस प्रकार कहने लगे।

श्रीवेदव्यास ने सूत जी को बताया कि एक समय देवर्षि नारद ने पवित्र नर्मदा के जल में स्नान करने के पश्चात् भगवान 'ओंकारेश्वर' की पूजा कर सामने संसार के सन्ताप (दुःख) को हरने वाली नर्मदा के जल से परिष्कृत (स्वच्छ) विन्ध्य पर्वत को देखा। विन्ध्य-पर्वत अत्यन्त शोभासम्पन्न दिखाई दे रहा था और वह अपने स्थावर और जंगम दोनों स्वरूप से इस पृथ्वी के 'वसुन्धरा' नाम को सार्थक कर रहा था।

विन्ध्य की शोभा

रसाल (आम), अशोक, ताल, तमाल, हिंताल, साल के वृक्ष विन्ध्य की शोभा को बढ़ा रहे थे। उस पर सोपाड़ी के बड़े-बड़े पेड़ मानो आकाश को ढक ले रहे थे। श्रीफल (बेल) शोभायमान लग रहे थे। अगर के वृक्ष सुगन्धी बिखेर रहे थे। कैंत का पीलापन देखने योग्य था। 'पर्वत' वनदेवी के कुचाकार लकुचों (लेकुटा) से बड़ा मनोहर लग रहा था और केलों के गुच्छ बड़े सुन्दर लग रहे थे। रंगीली नारंगियों के वृक्ष मानो उत्तम मण्डप बना रहे थे और बेल, नींबू तथा बिजौरा आदि से वे पूर्ण थे। कंकोल (गहुआ फल) वायु के थपेड़े से ऐसे हिल रहे थे मानों लताओं के साथ वे रास कर रहे हों। सारा विन्ध्य इस प्रकार लवली (लवा) लतिकाओं की छोटी-छोटी लीलाओं से नाच घर के समान लग रहा था। केले के पत्ते इस प्रकार हिल रहे थे मानों वे थके हुए पथिकों को अपनी छाया में विश्राम करने के लिये बुला रहे हों। नाग केसर के पल्लवरूप अपने हाथों से मानों वह बेला की कलियों के गुच्छरूपी स्तन का स्पर्श कर रहा हो।

पर्वत के फटे हुए अनार मानों विन्ध्य के अनुराग भरे हृदय को दिखा रहे हों और माधवी की लता को मानों वह लिपटा रहा था।

जिस प्रकार करोड़ों ब्रह्माणों को धारण किये हुए 'श्रीअनन्त भगवान' शोभायमान दिखाई देते हैं उसी प्रकार 'विन्ध्याचल' भी गूलर के ऊँचे २ पेड़ों से शोभायमान था। वनस्थली की नाक के समान कटहल और विरहियों का जी दुखाने के कारण जैसी उनकी दशा होती है उसी प्रकार सुग्गों की ठोर के समान पान-विहीन पलास के वृक्ष से वह घिरा था। बहुतेरे कदम्ब वृक्ष उसे घेरे खड़े थे। 'सुमेरू' पर्वत के ऊँचे शृङ्गों के अनुरूप रुद्राक्ष-वृक्ष, प्यारमेवा (पियाजमेवा की चिरौंजी) और धतूर के वृक्ष ऐसे लग रहे थे मानों वहाँ कामियों ने मन्दिर बनाये हों। पर्वत पर स्थित बरगद के पेड़ मानों किसी के बड़े-बड़े डेरे डाले हों और बकुले की भाँति कौरापा के गुच्छ दिखाई दे रहे थे। करौंदा, करञ्ज और कुलम्व की झाड़ियाँ भी उसकी शोभा को बढ़ा रहे थे। राजचम्पक की (पीली) कलियाँ मानों उसकी आरती उतार रही हैं।

'पर्वत' ऊँचे पीपल, सुवर्ण केतकी और मालाबद्ध नक्तमाल वृक्षों से शोभायमान लग रहा था। बैर, दुपहरिया, पतरजीवी, तेन्दुआ, इंगुआ और करना आदि पौधों से वह बड़ा सुन्दर लग रहा था। झरते हुए महुआ के फूल ऐसे लग रहे थे मानों 'विन्ध्य' उनसे पृथ्वी रूपधारी महादेव पार्थिवेश्वर की पूजा कर रहा था। साख, सहजन, अर्जुन के वृक्ष मानों उसे पंखा झल रहे थे। नारियल और खजूर इत्यादि के वृक्ष ऐसे लग रहे थे मानों वे पर्वत पर छत्र लगाये खड़े हों। मस्तक पर लगे तिलक के समान नीम, पारजाता, कचनार, पाँडर (गुलाब), इमली, झरबैरिया, शाखोट, मैंनफल, सेंहुड़, रेंड, महुआ, मौलसरी आदि से वह सुशोभित हो रहा था। वह बहेड़ा, पाकर, सलई, देवदारू, हरदी इत्यादि सदा फल-फूल देने वाले वृक्षों और लताओं से भरा पड़ा था।

'विन्ध्य पर्वत' इलायची, लवंग, मरिच, कुलञ्जन इत्यादि के वनों से युक्त था। जामुन, अमड़ा, भेलवाँ, लसोड़ा और खम्भारी आदि

उसे रंग-बिरंगा बना रहे थे। उस पर साग, शंख, चन्दन और रक्त-चन्दन परम रमणीक लग रहे थे। कठचम्पा और आँवले के वन उसकी शोभा को बढ़ा रहे थे। वह अंगूर (दाख), ताम्बूल और पीपल इत्यादि की लताओं से छाया हुआ था एवं जूही (वेइल), कुन्द और मदयन्ती आदि से सुगन्वित हो रहा था। 'विन्ध्य' पर्वत के 'मालती वृक्षों' पर उड़ने वाले 'भौंरे' ऐसे लग रहे थे मानों गोपियों के साथ क्रीड़ा करते वहाँ 'कृष्ण' ग्राये हों। वह पर्वत अनेक मृगों, नाना पक्षियों के कूञ्जन (ध्वनि) से गूंज रहा था। अनेक नदियाँ, ताल-तलैया, झरने, सरोवर आदि उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँ का वातावरण ऐसा लग रहा था मानों देवतागण स्वर्ग के सुख को छोड़ कर वहाँ विहार करने ग्रौर उसका पूर्ण भोग करने के लिए उस पर आकर वास कर रहे हों। पर्वत पर झरते हुए पत्ते ऐसे लग रहे थे मानों उससे वह अर्घ्य दे रहा हो। मोरों की ध्वनि बड़ी प्रिय लग रही थी। इसी समय दूर आकाश से नारद जी दीख पड़े।

श्री नारद दर्शन

सैकड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान देवर्षि नारद को आकाश मार्ग में आते हुए देख 'विन्ध्य देव' उनकी आगवानी को चल पड़ा। उस समय ऐसा लग रहा था मानों नारद जी के तेज से पर्वत गुफाओं के अन्धकार दूर ही गये हों और इस प्रकार विन्ध्य ने अपने हृदय का भी अन्धकार दूर कर लिया हो। पाषाण स्वभाव का त्याग कर कोमल हृदय से वह नारद जी के स्वागत सत्कार के लिये आतुर हो उठा।

श्री नारद जी उसके दोनों रूपों (पर्वतरूप तथा मूर्तिरूप) को देख कर बड़े आनन्दित हुए क्योंकि सन्तों का मन विनय के वशीभूत हो जाता है। अपने यहाँ आये हुए चाहे वह बड़ा हो, अथवा छोटा हो को देखकर जो नम्र हो जाता है वही व्यक्ति संसार में महान समझा जाता है। केवल बड़ा होने से ही किसी में बड़प्पन नहीं आता। अत्यन्त ऊँचे शिखर वाला 'विन्ध्य' मुनि के चरणों पर गिरकर प्रणाम

करने लगा तब देवर्षि नारद जी ने उसे अपने हाथों से उठाकर आशीर्वाद दिये और विन्ध्य द्वारा दिये गये सिंहासन पर जा बैठे।

नारद की पूजा

देवर्षि के सिंहासन पर बैठने के पश्चात विन्ध्य ने अष्टांग अर्थात् दही, शहद, घी, जल से भींगे अक्षत, दूब, तिल, कुश और पुष्प से ऋषि को अर्घ्य दिया और उनकी पूजा की। देवर्षि के चरण को दबा-कर उनकी थकान को दूर किया और इस प्रकार मुनि को प्रसन्न देख कर उसने निवेदन किया कि "हे मुनि! आपके चरण की धूली लगने से मेरे शरीर से 'रजोगुण' तो समाप्त हो गया है साथ ही आपके दर्शन से मेरे हृदय का अन्धकार भी दूर हो गया है। हे नाथ आज आप के

चरणों के यहाँ आने से हमारी सारी समृद्धि सुफल हो गयी। आज का दिन कैसा उत्तम है और आज मेरा यह पुण्य उदय हुआ है कि सेवा-पूजा-दर्शन कर मैं अपने को धन्य पारहा हूँ,। 'आज से पर्वतों में मेरा भी मान बढ़ेगा।' यह बात सुन नारद जी ऊँची और लम्बी सांस लेकर चुप हो गये। नारद जी की इस चुप्पी को देख विन्ध्य ने व्याकुल होकर पूछा कि "आपके इस उसांस का क्या कारण है? त्रैलोक्य में ऐसी

कोई वस्तु नहीं है जिसे आपने न देखा हो अतः मैं आपके चरणों पर पड़ता हूँ कृपा पूर्वक मुझे वह बात बताइये जिसके कारण आपने ऊँची सांस ली है।

विन्ध्य का गर्व

हेनाथ आपको देखकर मैं इतना गद्गद हो गया हूँ कि सब बातें तो नहीं कह सकता पर एक बात कहे बिना नहीं रहा जाता। जैसा कि 'सुमेरु' पर्वत के संवंध में पूर्व पुरुषों ने कहा है कि वह पृथ्वी को धारण करने की शक्ति रखता है यह बात उन सबों के समुदाय से है। परन्तु मैं तो अकेले ही इस पृथ्वी को धारण कर सकता हूँ। हाँ एक हिमालय है जो शिष्ट लोगों का मान्य है क्यों कि वह भगवती 'पार्वती' का पिता, पर्वतों का राजा एवं महादेव का संबंधी (श्वसुर) है। परन्तु सुवर्ण से पूर्ण, रत्नशिखर अथवा देवताओं की वासस्थली 'सुमेरु पर्वत' को मैं कुछ नहीं मानता। इस संसार में सभी पर्वत अपने-अपने स्थान पर ही माननीय हैं। मन्देह नामक राक्षसों के देह का सन्देह ही कर देने से 'उदयाचल' एक दया का आश्रित बना है। 'निषध' पर्वत तो ओषधियों से रहित ही है अर्थात् उस पर वनस्पतियाँ नहीं हैं। 'नीलगिरी' नीली (लील) का भवन (निलय) मात्र है। 'मन्दराचल' का प्रकाश मन्द है वहाँ सर्पों का ही वास है। 'रैवतक' पर्वत तो धन को कुछ समझता ही नहीं। हेमकूट, त्रिकूट, इत्यादि पर्वतों के उत्तर पद (अन्त) में कूट (तुच्छ) ही हैं 'किषकिंध', 'क्रांच', 'सह्य' आदि तो पृथ्वी का भार वहन करने योग्य ही नहीं हैं।

श्री नारद जी की चिन्ता

(इतनी अहंकारमय वाणी सुनकर देवर्षि नारद जी मन में सोचने लगे कि इतने बड़े अलंकार से किसी का बड़प्पन स्थिर नहीं रह सकता। क्या इसी भूमि पर निर्मल 'श्रीशैल' इत्यादि पर्वत नही हैं ? जिनके शिखर मात्र का दर्शन सज्जनों की मुक्ति का कारण बन जाता है। अतः आज इस पर्वत का भी बल देखना चाहिये।)

श्री नारद जी नें 'विन्ध्य' से कहा कि पर्वतों के सामर्थ्य का जो तुमने वर्णन किया है वह तो ठीक ही है पर समस्त "पर्वतों में 'सुमेरु' ही तुम्हारा अपमान करता है इसी पर मैंने उच्च स्वाँस लिया था जिसे तुमने प्रकट कर दिया। अन्यथा मेरे जैसे साधू को इन बातों से क्या लेना देना था। तुम्हारा 'कल्याण' हो।" कह कर देवर्षि आकाश मार्गसे चलते बने।

विन्ध्य की व्यथा

नारद मुनि के चले जाने पर 'विन्ध्य' बड़ा ही खिन्न हो उठा और अपने को धिक्कारने लगा। 'विन्ध्य' कहने लगा कि 'शास्त्र' के ज्ञान बिना जीवन को धिक्कार है, बिना कार्य के जीते रहने को धिक्कार है, जाति भाइयों से पराजित होकर जीते रहने को धिक्कार है, और झूठे मनोरथ करके जीने वाले को भी धिक्कार है। शत्रु से पराजित होने वाला कैसे दिन में खाता-पीता है, रात में सोता है और एकांत में सुख से रहता है। इस समय मेरे चित्त की चिन्ता की दाह मुझे दावानल के दाह से अधिक पीड़ा दे रही है। पुराने लोगों ने ठीक ही कहा है कि 'चिन्ता' की मूर्ति बड़ी भयावनी होती है क्योंकि औषधि, लंघन या किसी अन्य उपचार से वह शान्त नहीं होती। 'चिन्ता-रूपी ज्वर' निस्सन्देह लोगों की भूख, नींद, बल, स्वरूप, उत्साह, बुद्धि, शोभा और जीवन को समाप्त कर देती है।

छः दिन बीतने पर ज्वर को 'जीर्णज्वर' कहा जाता है परन्तु यह 'तेज चिन्ता ज्वर' प्रतिदिन नया ही होता रहता है। इसे 'श्री धन्वतरी जी', 'श्री चरकाचार्य जी' और दोनो 'अश्विनी कुमार' भी नहीं ठीक कर सकते। इस प्रकार की चिन्ता, करते-करते 'विन्ध्य' सोचने लगा कि हमारे 'पर' (पंख) तो इन्द्र ने हमारे ही किसी गोत्री के अपराध के कारण काट डाले नहीं तो मैं उड़कर सुमेरू के शिखर पर चढ़कर उसे धर दबोचता, परन्तु ऐसा करने में भी मैं असमर्थ हूँ। भूमि का बोझ ढोने वाले। सदा भ्रन्ति में रहते हैं यही कारण है कि

सुमेरू हमसे द्रोह करता है। इस सम्बन्ध में सत्यलोकवासी, ब्रह्मचारी वेदज्ञाता 'नारदजी', ने सत्य ही कहा कि "वह मुझसे द्वेष करता है" ।

अधिक उधेड़बुन करते-करते 'विन्ध्य' सोचने लगा कि पराक्रम में असमर्थ लोग ही इस प्रकार का सोच-विचार करते रहते हैं और वे कोई मार्ग निश्चित नहीं कर पाते हैं। अस्तु अब हमें भगवान 'विश्वनाथ' की शरण लेनी चाहिये। क्यों कि 'विश्वनाथ' ही सब अनाथों के 'नाथ' कहे जाते हैं। मैं अब यही करूंगा। व्यर्थ का समय नष्ट करने से कोई लाभ नहीं है। बुद्धिमानजन बढ़ते हुए शत्रु एवं रोग की कभी उपेक्षा नहीं करते। इसमें सन्देह नहीं है कि भगवान 'सूर्य' नक्षत्र गणों के साथ 'सुमेरू' को सबसे अधिक बलशाली समझ कर ही उसकी नित्य परिक्रमा (प्रदक्षिणा) करते हैं।

'विन्ध्याचल' की वृद्धि

इस प्रकार निश्चय कर सुमेरु पर क्रोधित हो विन्ध्याचल असीमित आकाश मार्ग को घेरने के लिए अपने शिखर को ऊंचा करता गया।

"कभी किसी के साथ विरोध नहीं करना चाहिये और यदि दुर्भाग्यवश करना ही पड़ जाय तो ऐसा करे जिसमें कोई उपहास न कर सके", विन्ध्याचल ऊंचा हो कर 'यमराज' के पिता 'भगवान सूर्य' का मार्ग रोक कर अपने को कृतकृत्य समझ निश्चल भाव से खड़ा हो गया। और निश्चय किया कि अब जिस पर्वत की दाहिनी ओर से 'सूर्य' घूमकर जावेंगे वही पर्वत कुलीन, श्रीमान्, महान और पूजित होगा। "शक्तिवान जब तक अपनी शक्ति को प्रकट नहीं करता तब तक लकड़ी में छिपी अग्नि के समान अपने को वह सभी से लंघ्य अर्थात् दब्बू बना रहता है"।

सब चिन्ताओं से युक्त हो स्थिर संकल्प करके विन्ध्य गिरी ब्राह्मण के समान खड़ा हो भगवान भास्कर के उदय होने की प्रतीक्षा करने लगा।

(आदिशक्ति विन्ध्येश्वरी सदा इसी पर्वत पर वास करती हैं ।)

इस प्रकार यह स्कन्द पुराण के चतुर्थ खण्ड के पूर्वार्द्ध में 'विन्ध्य पर्वतकी वृद्धि', नाम के १ (प्रथम) अध्याय की कथा का भाषा में वर्णन किया गया ।

———

अध्याय २

सत्यलोक वर्णन

श्री वेदव्यास जी ने सूत जी से आगे की कथा का वर्णन करते हुए कहा कि संसार के आत्मा, अन्धकार के शत्रु, सन्मार्गगामियों (उत्तम मार्ग पर चलने वालों) के धर्मों को अपने उत्तम किरणों से पवित्र करने वाले, तामस को दूर भगाने वाले, रात्रि में मुरझायी अपनी प्रिय कमलिनी (कमल की पखुड़ियों) को प्रसन्न (खिलाने) करने वाले, देवताओं के लिए 'हव्य', पितरों के लिये 'कव्य' और अन्य जीवों के लिये 'भूत बलि' आदि को दिलाने वाले, प्रातः मध्याह्न एवं सायंकी क्रिया के काल को स्पष्ट करने वाले, रात्रि से ग्रसित संसार का उद्धार करने वाले भगवान 'भास्कर' उदयाचल पर उदय हुए।

'सूर्य के उदय होते ही समस्त धार्मिक लोगों का भी पूर्ण उदय हो जाता है अर्थात् सभी धर्म-कर्म, सन्ध्या-पूजा, जप-यज्ञ आदि कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं और इस प्रकार परोपकार तुरन्त ही फलने लगता है ।

व्यास जी ने आगे कहा कि जो 'सूर्य' सायंकाल अस्त हो जाते हैं प्रातः काल उदय होकर खण्डित नायिका के समान पर्व दिशा को अपने अनुराग भरे हाथों से स्पर्श कर उसे आश्वस्त करते हैं तो उस समय ऐसा लगता है मानों विरहानल से जलती हुई 'अग्नि दिशा' का

एक प्रहर सम्भोग कर लवंग, इलायची, कस्तूरी, कर्पूर और चन्दन का लेप चढ़े हुए, पान के रंग से रंगे ओष्ठवाली, अंगूरों के (दाखों के) गुच्छारूप सुन्दर कुचाग्र से युक्त, लवलीलता रूप हस्तवल्ली से विराजित, अशोक पल्लव के समान जिसकी 'अंगुलिया' हों, मलयाचल के सुन्दर सगन्धित वायुरूप जिसके 'श्वास' चलते हों, 'क्षीर समुद्र' को ही मानों वस्त्र के समान जो पहने हो, त्रिकूट पर्वत से रत्नों को जो अपने शरीर पर धारण किये हो, सुवेलगिरि के समान जिसके 'नितम्ब' हों, कावेरी और गोदावरीरूप जंघा से सुसज्जित, चोलदेशरूपी 'चोली' को धारण किये हुए, सह्य और दुर्दर (पर्वत) के समान जिसके 'वक्षोज' हों, कांचीपुरीरूपी 'करधनी' जिसके कमर में पड़ी हो, अत्यन्त कोमल महाराष्ट्रमणियों के वागविलास से परम मनोहारिणी, सद्‌गुणशालिनी, अद्यावधि (कोल्हापुरा धीश्वरी) 'महालक्ष्मी' की निवास (अधिष्ठान) भूमि दक्षिण दिशा की ओर जब दिशाओं के स्वामी 'सूर्य देव' जाने लगे तब उनके खेलखेल में आकाश मण्डल को लाँघने वाले घोड़े तनिक भी आगे नहीं बढ़ सके।

ऐसी स्थिति में सूर्य के सारथी 'अरुण' ने भगवान से कहा कि "हे भानुदेव ! 'विन्ध्याचल' गर्व से उन्नत हो हमारे आकाश मार्ग को छेंक कर खड़ा है और इस प्रकार स्पष्ट है कि आपकी दी हुई प्रदक्षिणा को पाने की इच्छा करने वाले सुमेरु से वह ईर्ष्या कर रहा है।"

सारथी की बात सुनकर सूर्य भगवान आश्चर्य में पड़ गये और सोचने लगे कि इसने आकाश मार्ग को रोक कर बड़ा अनर्थ किया है।

श्री व्यास जी ने आगे बताया कि जो 'सूर्य' राहू के वाहुग्रस्त (ग्रहण लगने पर) होने पर क्षणभर नहीं ठहरते और शीघ्रता से उससे छुटकारा प्राप्त कर बाहर हो जाते हैं, आज विन्ध्य द्वारा उनके आकाश मार्ग को रोक लिये जाने के कारण इतनी देर तक रुके रहें और उनका कोई वश न चले। अकेले उस रुके मार्ग को वे कैसे लाँघें वास्तव में

'माया' की लीला को कोई नहीं जान सकता है। जो 'सूर्य' मनुष्य के आधे निमेष (पल से कम) में २२०२ (दो हजार दो सौ दो) योजन चले जाते हैं आज उन्हें भी अधिक देर तक यहाँ रुकना पड़ा। बहुत समय तक सूर्य का रथ रुक जाने से 'पूर्व' और 'उत्तर' के लोग प्रचण्ड 'मार्तण्ड' की किरणों से उत्पन्न होने वाली अधिक गर्मी के कारण घबड़ाने लगे तथा पश्चिम और दक्षिण के लोग निद्रा से आँखें मूदे सोते ही सोते आकाश की ओर देखने लगे और सोचने लगे कि सूर्य के न रहने से इसे दिन कैसे माना जाय और यह रात्रि भी नहीं रह गयी क्योंकि 'चन्द्रमा' भी नहीं रहे, आकाश में तात्कालिक 'नक्षत्र' भी नहीं दिखाई दे रहे हैं अतः यह कौन सा काल (समय) है कुछ भी समझ में नहीं आता। क्या समय से पूर्व ही 'ब्रह्माण्ड' का 'लय' (नाश) हो जाएगा ? नहीं ऐसा नहीं है अन्यथा यह सब समुद्र चारों ओर से 'ब्रह्माण्ड' को अब तक बहा डालते। उस समय उस दिशा में स्वाहा-स्वधा-वषट-युक्त 'पञ्चयज्ञ' क्रिया के न होने से तीनों लोक काँपने लगे। सूर्य के उदय होने पर ही 'यज्ञादिक' सब क्रिया प्रारम्भ होती है और उन्हीं क्रियाओं के माध्यम से 'यज्ञभोजी देवतागणों' की तृप्ति होती है अस्तु इन सबका कारण 'सूर्य' को ही समझना चाहिये 'सूर्य' नहीं तो कुछ नहीं। चित्रगुप्त आदि 'सूर्य' को ही आधार मानकर समय का निर्धारण करते हैं। इसलिये 'सूर्य' ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय के एक मात्र कारण माने जाते हैं।

व्यास जी ने सूत जी से कहा कि ऐसे सूर्य की गति रुक जाने से सारा त्रैलोक्य आश्चर्य चकित हो गया और जो जहाँ रहा वहीं स्थिर सा हो गया। एक ओर घोर अन्धकार और दूसरी ओर प्रचण्ड धूप (घाम) से कितनों का नाश हो गया अर्थात लोग शीत से गल गये और गर्मी से भस्म हो गये। सारा संसार भय से व्याकुल हो उठा। इस भाँति सुर, असुर, नर, नाग, सभी बड़े व्यग्र हो गये और कहने लगे कि 'अनायास ही यह क्या हो गया।' लोग इधर-उधर भागने और दुःख से रोने लगे।

देवता चिन्तित

संसार की यह गति देखकर सभी देवता ब्रह्मा जी के पास गये और 'रक्ष-रक्ष' कहकर उनकी प्रार्थना कर इस प्रकार स्तुति करने लगे—

देवी देवताओं द्वारा ब्रह्मा जी की स्तुति

(अभीष्टद स्तोत्र)

॥ देवा ऊचुः ॥

नमो हिरण्यरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे ।
अविज्ञातस्वरूपाय कैवल्यायामृताय च ॥
यन्न देवा विजानंति मनो यत्रापि कुण्ठितम् ।
न यत्र वाक् प्रसरति नमस्तस्मै चिदात्मने ॥
योगिनीयं हृदाकाशे प्रणिधानेन निश्चलाः ।
ज्योतिरूपं प्रपश्यन्ति तस्मै श्रीब्रह्मणे नमः ॥
कालात्पराय कालाय स्वेच्छया पुरुषाय च ।
गुणत्रयस्वरूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे ॥
विष्णवे सत्त्वरूपाय रजोरूपाय वेधसे ।
तमसे रुद्ररूपाय स्थितिसर्गान्तकारिणे ॥
नमो बुद्धिस्वरूपाय त्रिधाहंकृतये नमः ।
पञ्चतन्मात्ररूपाय पञ्चकर्मेन्द्रियात्मने ॥
नमो नमःस्वरूपाय पञ्चबुद्धींद्रियात्मने ।
क्षित्यादिपञ्चरूपाय नमस्ते विषयात्मने ॥
नमो ब्रह्माण्डरूपाय तदन्तर्वर्तिने नमः ।
अर्वाचीनपराचीनविश्वरूपाय ते नमः ॥
अनित्यनित्यरूपाय सदसत्पतये नमः ।
समस्तभक्तकृपया स्वेच्छाविष्कृतविग्रह ॥
तव निश्श्वसितं वेदास्तव स्वेदोऽखिलं जगत् ।
विश्वा भूतानि ते पादः शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं लोमानि च वनस्पतिः ।
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यस्तव प्रभो ॥
त्वमेव सर्वं त्वयि देव सर्वं स्तोता स्तुतिः स्तव्य इह त्वमेव ।
ईशत्वयाऽत्रास्यमिदं हि सर्वं नमोऽस्तु भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

(देवताओं ने कहा कि "हे विराट स्वरूप, हिरण्यगर्भ, अविज्ञात-स्वरूप, एवं आनन्द स्वरूप ब्रह्मदेव आपको नमस्कार है। आपको देवता लोग भी भली प्रकार नहीं जान सकते, एवं मन भी जिसके सम्बन्ध में रुक (कुंठित) जाता है अर्थात् जहाँ वाणी भी अवरुद्ध (कुछ नहीं कर पाती) हो जाती है ऐसे चैतन्यघन आपको नमस्कार है। योगी लोग आपके ज्योतिस्वरूप को अपने हृदयाकाशरूपी अन्त:करण में ध्यान लगाने पर देखते हैं उस श्रीमान् ब्रह्मदेव को हम सब प्रणाम करते हैं। जो काल से अलग होने पर भी काल के समान हैं, जो अपनी इच्छा के अनुसार ही हो जाते हैं अथवा तीनों गुणों (सत्व-रज-तम) की मूर्ति 'प्रकृतिरूप' में हैं वैसे आपको नमस्कार है। जो सत्वगुणी 'विष्णुरूप' होकर सृष्टि का पालन करते हैं, रजोगुणी 'ब्रह्मरूप' हो सृष्टि को उत्पन्न करते हैं और तमोगुणी हो 'रुद्ररूप' धर कर संसार का संहार करते हैं ऐसे आपको हम सब प्रणाम करते हैं। बुद्धिस्वरूप वैकारिक-तैजस-तामस रूपी अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पंचतन्मात्रा स्वरूप, पायु, उपस्थ, हस्त, पाद, वचन रूपी कर्मेन्द्रियों के रूप आपको हम प्रणाम करते हैं। मन: स्वरूप पांचों बुद्धि के 'इन्द्रियों' के (कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका), पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश रूपी 'पंचभूत' स्वरूप एवं स्थूल विषयक आप 'ब्रह्म' को हम सब नमस्कार करते हैं। जो स्वयम् ब्रह्माण्ड स्वरूप होने पर भी उसके बीच में कार्य रूप हैं ऐसे आपको हम प्रणाम करते हैं। जो वर्तमान और प्राचीन विश्वरूप हैं ऐसे आपको हम सब बार-बार नमस्कार करते हैं। अनित्य और नित्य के स्वरूप तथा सत् और असत् के मात्र स्वामी आपको हम सबका प्रणाम स्वीकार हो। हे सभी भक्तों पर कृपा करने

हेतु अपनी इच्छा से शरीर धारण करने वाले 'ब्रह्मदेव' आपका श्वास ही 'वेद' है, आपके पसीने से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है, सभी भूतगण आपके चरणों के दास हैं और स्वर्ग आपके मस्तक से ही उत्पन्न हुआ है, आपकी नाभी (ढोढी) से आकाश उत्पन्न हुआ है, आपके रोयें से ही वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई है। हे प्रभु आपके मनसे ही 'चन्द्रमा' और नेत्रों से 'सूर्य' प्रकट हुए हैं। हे देव ! आप ही सब कुछ हो और सारा संसार आप ही के अधीन है। इस संसार में स्तुति करने वाले और स्तुति योग्य एक मात्र आप ही हैं। हे नाथ यह सारा संसार आपका ही बसाया हुआ है। अतएव आपको हम सब बारम्वार प्रणाम करते हैं।)

इस प्रकार देवताओं ने ब्रह्मा की भक्ति के साथ स्तुति करके पृथ्वी पर लेट कर प्रणाम किया। तब ब्रह्मा जी उनसे कहने लगे कि 'हे विनयी देवगण ! आपके द्वारा की गयी इस स्तुति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, आप लोग उठें और इच्छित 'वर' मांगें।

ब्रह्मा का आशीर्वाद

ब्रह्मा जी ने आगे कहा कि जो मनुष्य पवित्र होकर नित्य उपरोक्त स्तोत्र पाठ से 'मेरी', 'महादेव' की और 'विष्णु' की स्तुति करेगा उस पर हम सब सदा कृपा करेंगे। और उससे प्रसन्न रहेंगे। साथ ही उसके सभी मनोरथ पूर्ण करते हुए पुत्र-पौत्र, पशु, धन, सौभाग्य, आयु निर्भयत्व और संग्राम में उसे विजय देंगे वह स्तुति करने वाला लौकिक और पारलौकिक इच्छित सुखों को भोग कर अक्षय 'मोक्ष' को प्राप्त करेगा। अस्तु सबको चाहिये कि इस उत्तम स्तोत्रका पाठ करें। यह सब सिद्धियों को देने वाला स्तोत्र 'अभीष्टद' नाम से विख्यात होगा।

इतना सुन जब देवता गण उठकर खड़े हुए तब ब्रह्मा जी ने उनसे पुनः कहा कि तुम लोग स्वस्थ हो कर बैठो, यहाँ घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। देखो ये मूर्ति स्वरूप चारो 'वेद' हैं, ये सब

चौदहो विद्यायें हैं, ये दक्षिणा से पूर्व (अग्निष्टोमदिक) यज्ञ हैं, यह धम हैं, यह तपस्या हैं, यह दम-ब्रह्मचर्य-करुणा-भारती-सब श्रुति-स्मृति और यह पुराणों के अर्थ को जानने वाले जन (गण) हैं। यहाँ
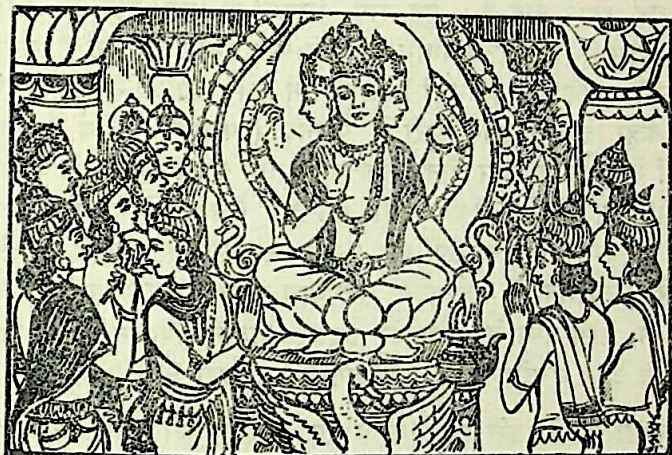
पर काम, क्रोध, मत्सर, अधीरता, भय, हिंसा, कुटिलता, अहंकार, निन्दा, असूया (ईर्ष्या) और अपवित्रता नहीं रहती। जो ब्राह्मण वेदाध्यायी, तपोनिष्ठ, तपोधन, और एक मास, छः मास एवं चातुर्मास आदि उत्तम व्रत को करता है तथा जो पतिव्रता धर्म को पालन करने वाली स्त्रियाँ हैं और जो दूसरे ब्रह्मचारी लोग हैं अर्थात् दूसरे की स्त्री के समक्ष नपुंसक बने रहते हैं, हे देवता गण ! वे ही सब लोग यहाँ वास करते हैं। ये लोग माता-पिता के भक्त हैं, ये सब 'गऊ' के पुकार पर प्राण देने वाले हैं, व्रत, दान, जप, यज्ञ, स्वाध्याय, ब्राह्मण भोजन, तर्पण-तीर्थयात्रा, तपस्या, परोपकार और सदाचार आदि अच्छे कर्मो को करने पर भी कुछ फल पाने की इच्छा नहीं रखते वे ये ही लोग हैं। गायत्री जप करने वाले, अग्निहोत्री, दो-मुहीं ब्याती हुई अर्थात् गाभिन गऊ के दान कर्त्ता, कपिला के दान करता, स्पृहारहित (इच्छारहित), सोमपान करनेवाले, ब्राह्मणों के चरणोदक को मस्तक

पर लगने वाले, सारस्वत (प्रभास आदि) तीर्थ में मरे हुए, ब्राह्मणों के सेवक गण, दान लेने का सामर्थ्य रखते हुये भी जो दान नहीं लेते और तीर्थ में प्रतिग्रह (दान) न लेने वाले ऐसे सभी ब्रह्मण (ब्रह्मारूप) हमें बड़े प्यारे होते हैं। यह लोग, 'मकर' के 'सूर्य' होने पर अर्थात् माघ मास में तीर्थराज प्रयाग में प्रातःकाल स्नान कर सूर्य के समान तेजस्वी (पवित्र) हो यहाँ विराज मान हैं। ब्रह्माजी ने आगे बताते हुए कहा कि वाराणसी पुरी के पंचनद (पंचगंगा) तीर्थ में जिन लोगों ने कम से कम तीन दिन भी स्नान कर लिया है वे पुण्य के भागी परम निर्मल होकर यहाँ बैठे हैं। (काशी के) मणिकर्णिका कुण्ड में स्नान कर ब्राह्मणों को धन देकर प्रसन्न करने वाले ये लोग हमारे सत्यलोक में एक कल्प तक वास करने के लिये यहाँ बैठे हैं। अन्त में उसी पुण्य के प्रताप से इनपर भगवान् विश्वनाथ की कृपा होती है और ये लोग मोक्ष (परमगति) को प्राप्त होते हैं।

ब्रह्मा जी ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा कि जो लोग 'अविमुक्त क्षेत्र' (काशी) में थोड़ा-सा भी सत्कर्म करते हैं तो उसका फल उन्हें दूसरे जन्म में 'मोक्ष' के रूप में मिलता है। (अर्थात् काशी में सत्कर्म करने के पश्चात काशी से बाहर मृत्यु होने पर उनका पूनर्जन्म 'काशी' में ही होता है और वहीं मृत्यु को प्राप्त हो वे मोक्ष की उपलब्धि करते हैं) विश्वनाथ की राजधानी (काशी) में लोग मृत्यु से भय नहीं खाते बल्कि पाहुन की भाँति उसके स्वागत की प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं कि वह कब इस काशी में मिलेगी।

जिन लोगों ने कुरुक्षेत्र में धन का दान किया है वे उत्तम शरीर वाले मेरे समीप बैठे हैं। जिन्होंने 'गयातीर्थ' में जाकर वहाँ 'पिता महेश्वर' के पास श्राद्ध कर अपने पितरों को तृप्त कर दिया है मेरे पास उन्हींके पितरगण यहाँ बैठे हैं।

ब्रह्मा जी ने देवताओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि स्नान, दान, जप, पूजा करने मात्र से मेरा यह 'सत्यलोक' वास किसी को

नहीं मिलता जब तक कि वह 'ब्राह्मणों' को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं करता। जिन लोगों ने मूसल-ओखली, शय्या सहित उत्तम गृहस्थी की सामग्री ब्राह्मणों को दान में दी है ये अटारियाँ उन्हींकी यहाँ बनी हैं इनमें वे ही लोग वास करते हैं। जो लोग पाठशाला बनवाते हैं, चारो वेद पढ़वाते हैं अर्थात् इस प्रकार वेद विद्याओं का दान करते हैं, पुराणों की कथा सुनवाते हैं, 'पुराण ग्रन्थों', 'धर्मशास्त्रों' तथा अन्य धार्मिक पुस्तकों का दान करवाते हैं ऐसे ही लोग मेरे इस सत्य लोक में निवास करते हैं। जो लोग यज्ञ, विवाह, व्रत आदि कार्य करने के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को यथेष्ट (पूर्ण) धन देकर सन्तुष्ट करते हैं वे यहाँ पर अग्नि के समान तेजस्वी बन कर चमकते रहते हैं। जो कोई वैद्य को जीवनवृत्ति देकर आरोग्यशाला (अस्पताल) स्थापित कराता है वह मनुष्य यहाँ पर एक कल्प तक निवास कर सब उत्तम भोगों को भोगता है। जो कोई 'कर' आदि जैसे दुष्ट प्रयोजन कर तीर्थ को छुड़ा देते हैं वे मेरे अन्तःपुर में औरस पुत्र के समान रहते हैं।

ब्राह्मण और गऊ

ब्रह्मा जी ने देवताओं से कहा कि ब्राह्मण लोग 'शिव' और 'विष्णु' के बड़े प्रिय होते हैं क्योंकि उन्हींकी कृपा से हम लोग मूर्ति रूप में पृथ्वी पर दिखाई देते हैं। 'ब्राह्मण' और 'गऊ' ये दोनों एक वंश के दो भाग हैं। इनमें से ब्राह्मणों में 'मन्त्र' विराजता है और गऊ में 'हवि' (घी) रहता है। ब्राह्मणों को सार्वभौम जंगम तीर्थ के रूप में बनाया गया है। उन्हींके आशीर्वाद रूपी वचनों को सुन कर अन्य लोग अपनी शुद्धि करते हैं। इसी प्रकार गऊ भी परमपवित्र होती हैं। उसके सींग पर सब तीर्थ, खुर के अगले भाग में सभी पर्वत, दोनों सींगों के बीच में साक्षात् 'गौरी' (माहेश्वरीदेवी) वास करती हैं। जब गऊ दान होता रहता है तब उस समय दान करने वाले के पितरगण अत्यन्त प्रसन्न हो नाचने लगते हैं। ऋषिगण हर्षित होते हैं

श्रौर हम सब देवतागण भी उससे अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। परन्तु गऊदान को देखकर दरिद्रता और व्याधि (कष्ट) के साथ पापी लोग बहुत रोते हैं। सबका पालन करने वाली गऊ को माता के समान समझना चाहिये। जो मनुष्य 'गऊ' की स्तुति करता है, उसे प्रणाम करता है तथा उसकी परिक्रमा करता है उसे सातों द्वीपों की परिक्रमा करने का फल मिल जाता है।

गऊ की स्तुति

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या देवेषु व्यवस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा चैव विभावसोः।
स्वधा या पितृमुख्यानां सा धेनुर्वरदा सदा ॥
गोमयं यमुना साक्षाद्गोमूत्रं नर्मदा शुभा।
गंगाक्षीरं तु यासांवै किं पवित्रमतः परम ॥
गवामंगेषु तिष्ठंति भुवनानि चतुर्दश।
यस्मात्तस्माच्छिवं मेस्यादिह लोके परत्र च ॥

(जो सब भूतों की लक्ष्मी है, जिसकी गणना देवताओं के समान की गई है, वह कामधेनु के समान 'देवी' मेरी रक्षा करें। जो लक्ष्मी के वक्षस्थल पर वास करती हैं, देवताओं के लिये स्वाहा रूप है, तथा पितरों के लिये स्वधारूपा हैं, वही धेनु हमें वरदान दे। जिसका गोबर यमुना के समान है और मूत्र पवित्र नर्मदा तुल्य होता है, जिसका दूध गंगा जल के समान पवित्र होता है ऐसी 'गऊ' से पवित्र और क्या हो सकता है। जिन कारणों से 'गऊ' के सब अंगों में चौदहो भुवन व्याप्त हैं उन्हीं कारणों से 'गऊ' के द्वारा इस संसार में और परलोक में मेरा कल्याण हो।)

जो मनुष्य ऊपर लिखे मन्त्रों का उच्चारण कर एक या अनेक गऊ उत्तम (सुपात्र) ब्राह्मण को दान देता है वह लोगों में विशेष प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है।

ब्रह्माजी ने यह भी रहस्य बताया कि इन्हीं सब कारणों से 'शिव', 'विष्णु', मैं और अन्य ऋषिगण सदा यही मनाया करते हैं कि 'गऊ' हमारे सामने रहें, पीछे रहें, हृदय में रहें अर्थात् हम सब गऊओं के बीच रहें। जो पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य 'गऊ' के पूँछ से अपने को पोंछता है उसके अंगों से दरिद्रता, कलह एवं रोग दूर भाग जाते हैं। 'गऊ', 'ब्राह्मण', 'वेद', 'सती', 'सत्यवादी', 'निर्लोभ' और दानशील के भरोसे ही यह पृथ्वी टिकी है।

मेरे इस 'सत्यलोक' के ऊपर जो लोक है उसे 'वैकुण्ठ लोक' कहा जाता है, उसके ऊपर 'कुमार लोक' है तथा उसके भी ऊपर 'उमा लोक' है। 'उमालोक' से ऊपर 'शिवलोक' है और उसके पास में ही 'गऊ लोक' है। वहाँ पर निवास करने वाली 'सुशीला' आदि गऊ-माता भगवान् महादेव को विशेष रूप से प्रिय हैं। अतः गऊओं की सेवा करने वाले तथा 'गऊ' का दान करने वाले इन लोकों में से किसी एक लोक में सभी समृद्धियों के साथ निवास करते हैं। जहाँ पर दूध की धारा बहने वाली नदियाँ हैं, और पायस (खीर) का कीचड़ रहता है वहाँ ही गोदान करने वाले जाते हैं।

पुराण की कथा सुनें

श्रुति, स्मृति, पुराणों को जानने वाले, उसके अनुसार आचार-विचार रखने वाले ही ब्राह्मण हैं और उन्हींकी कीर्ति होती है अन्य तो नाम मात्र के ब्राह्मण होते हैं। वेद-शास्त्र दोनों 'नेत्र,' और पुराण 'हृदय' कहलाते हैं। अस्तु जो ब्राह्मण श्रुति-स्मृति के ज्ञान से हीन हैं उन्हें अन्धा और जिसे इनमें से एक का ज्ञान हो उसे काना समझना चाहिये। जो ब्राह्मण 'पुराण' को न जाने उसे हृदय से ही शून्य समझना चाहिये। तात्पर्य यह कि वे अन्धे और काने से भी गये बीते होते हैं। इसका कारण यह है कि 'श्रुति' और 'स्मृति' की ही बातें 'पुराणों' में कही गयी हैं। अतः सर्वत्र सुख की अभिलाषा रखने वालों को चाहिये कि श्रुति-स्मृति-पुराण को जानने वाले उत्तम ब्राह्मणों को 'गऊ' दान दें, नाम मात्र के ब्राह्मण को नहीं। जो लोग धर्म को जानना चाहें और पाप से जिन्हें भय लगता हो उन्हें 'पुराण' की कथा अवश्य सुननी चाहिये। चौदहो विद्याओं में 'पुराण' ही दीपक के समान सब विद्याओं पर प्रकाश डालता है। अर्थात् 'पुराण' की कथाओं को सुनने से सब विद्याओं के तत्त्व का ज्ञान हुआ ही समझना चाहिये। अस्तु 'पुराण' के प्रकाश से अन्धा मनुष्य भी संसाररूपी समुद्र के जाल में नहीं फँसता।

ब्रह्मलोक की इच्छा

ब्रह्मा जी ने आगे कहा कि जो लोग हमारे इस ब्रह्मलोक में वास करने की इच्छा करते हों उन्हें चाहिये कि वे 'पुराण' की कथा को सुनें, पढ़ें और गुनें तथा ब्राह्मणों को हर प्रकार से सुन्तुष्ट रखें। हे देवतागण! इस सत्यलोक की कथा को मैंने प्रसंगवश कहा है वास्तव में यह 'सत्यलोक' संसार से डरे हुए लोगों के लिए निर्भय स्थान है। अतः आप सब लोग यहाँ किसी बात का भय न मानें 'विन्ध्य' पर्वत ने 'सुमेरू' पर्वत से डाह कर 'सूर्य' के मार्ग को रोक रखा है। उसी

के निमित्त आप सब यहाँ आये हैं सो उसका उपाय मैं आपको बता रहा हूँ उसे करें तभी वह मार्ग से हट सकेगा।

ब्रह्मा जी ने उपाय बताते हुए कहा कि सब किसी को मुक्ति देने वाले 'अविमुक्त क्षेत्र' में भगवान् विश्वनाथ में चित्त लगाकर मित्रावरुण के पुत्र परमतपस्वी अगस्त्य मुनि घोर तपस्या कर रहे हैं। उन्हीं के पास जाकर प्रार्थना करें वे ही आप सबका कार्य सिद्धकर सकते हैं। पूर्वकाल में उन्होंने 'वातापी' तथा 'इल्वल' राक्षसों का भक्षण कर सबकी रक्षा की थी। वह अगस्त्य मुनि सूर्य से भी अधिक तेज वाले हैं अत: उनसे सभी डरते हैं। इतना सुनकर देवतागण बड़े प्रसन्न हुए और अपने को धन्य माना तथा आपस में चर्चा करने लगे कि इसी बहाने 'काशी' और काशीपति भगवान् 'विश्वनाथ' का भी दर्शन हमें मिलेगा। बहुत दिनों पर हमें अपना मनोरथ पूर्ण करने का अवसर मिला। वे चरण धन्य हैं जो 'काशी' की ओर बढ़ते हैं। आज जो कथा हम लोगों ने ब्रह्मा जी से सुनी उसी का यह फल हमें मिला है कि हम 'काशी' जाएँगे। जब बहुत बड़े पुण्य का उदय होता है तभी एक कार्य करते हुए दो प्रयोजन सिद्ध होते हैं। इस प्रकार का विचार करते हुए देवगण 'काशी' जा पहुंचे।

अन्त में व्यास जी ने कहा कि जो मनुष्य इस परम पवित्र कथा को पढ़ेंगे या सुनेंगे वे इस लोक में सुखों को भोग कर, अपना वंश छोड़ कर, सब पापों से छूट कर सत्य लोक में बहुत समय तक निवास करेंगे और अन्त में शाश्वत (परम) पद को प्राप्त होंगे।

इस प्रकार यह स्कन्द पुराण के चतुर्थ खण्ड के पूर्वार्ध में सत्य लोक वर्णन नामक २ (द्वितीय) की कथा का भाषा में वर्णन किया गया।

———

अध्याय ३

देवगण और अगस्त्य

सूतजी ने श्री वेदव्यास की प्रार्थना की और कहा कि हे महाभाग ! आप भूत और भविष्य के जानने वाले हैं, सब ज्ञानों के खान हैं। अभीं आपने जो कथा कही है उतने से हमारी तृप्ति नहीं हो रही है अस्तु कृपा पूर्वक यह बतायें कि 'काशी' में पहुँच कर देवताओं ने क्या किया ? उन्होंने अगस्त्य ऋषि से किस प्रकार प्रार्थना की और विन्ध्याचल किस प्रकार से झुका ?

पराशर मुनि के पुत्र श्री वेदव्यास जी ने अपने प्रिय शिष्य सूतजी के प्रश्नों को सुनकर कहा कि हे महामते सूत ! भक्ति और श्रद्धा के साथ उस उत्तम प्रसंग को सुनो हम तुम्हें बताते हैं। इस कथा को हमारे पुत्र सुकदेव और वैशम्पायन ने भी सुना है।
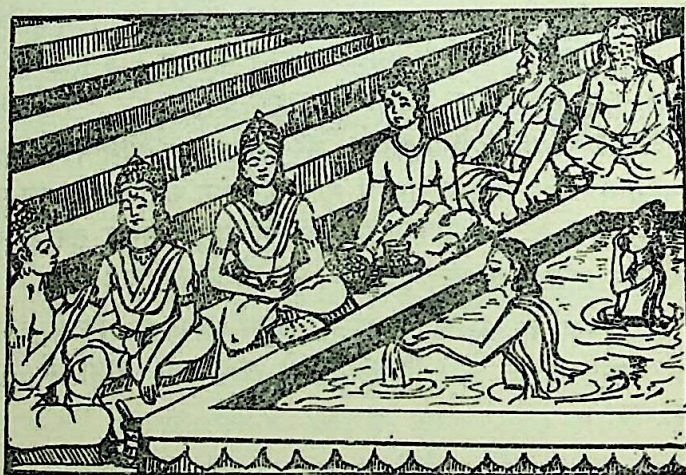
देवता लोग महर्षियों को साथ में लेकर जब वाराणसी पुरी में पहुँचे तो सबसे पहले उन्होंने 'मणिकर्णिका कुण्ड' में विधिपूर्वक सचैल स्नान

किया। उसके बाद सन्ध्या आदि नित्य कर्म कर कुश, तिल, जल, से देवताओं तथा पितरों का तर्पण किया। इसके पश्चात् सबने रत्न सोना, वस्त्र, आभरण, घोड़ा, गऊ, सोने तथा चाँदी के बर्त्तन, अमृतके समान उत्तम पकवान, मिश्री मिली हुई खोए की मिठाई, गोरस सहित अन्न, अनेक प्रकार के धान्य, गन्ध, चन्दन, कपूर, ताम्बूल, सुन्दर चवर, तोषक-तकिया सहित शैय्या (पलंग) दीवट, दर्पण (शीशा) आसन, बिछौना, पालकी, दास-दासी, विमान, पशु, घर, चित्र, ध्वजा, पताका, चन्दवा, गृहस्थी की सब सामग्री के साथ पूरे वर्ष भर के लिये भोजन की सभी वस्तुएँ, खड़ाऊं, जूता आदि का दान कर सभी तीर्थ वासियों को सन्तुष्ट किया। तथा संन्यासी और तपस्वियों को यथेष्ट जो जैसा था उसके अनुरूप वस्त्र, कमण्डल, मृगछाला, कौपीन, ऊंची चौकी, सेवकों के वर्तनार्थ सुवर्ण, मठ, विद्यार्थियों के लिए अन्न, आतिथ्य सत्कार के लिए प्रचुर धन, पुस्तक लेखकों के लिए 'जीवन वृत्ति', औषधालयों के लिए धन, सदावर्त्त, पौसरा, आदि के लिये धन दान कर प्रत्येक मन्दिरों के कथा वाचकों को भी धन देकर सन्तुष्ट किया। देवलायों में नृत्य आदि समारोह करवाये, देवस्थानों का जीर्णोद्धार करवाया तथा उनकी सफाई करवाई, उनमें आरती, गुग्गुल इत्यादि वत्ती आदि पूजन सामग्री की पूर्ण व्यवस्था की पंचामृत, और सुगन्धित जलों से देवताओं के स्नान, फूलों के लिये वाटिकाओं का प्रबन्ध किया। तीनों समय की 'महापूजा' के हेतु पुष्पमाला गूंथने के लिए, शिवालय में शंख, नगाड़ा, मृदंग, घण्टा, गड़ुआ, घड़ा इत्यादि, स्नान के उपयुक्त दो-बड़े पात्र, सफेद वस्त्र (पोंछने के लिए) सुगन्धित यक्ष कर्दम (कस्तूरी, अगर, कंकोल मिला) आदि के लिए धन देकर, जप किया, हवन किया और उच्चस्वर से 'महादेव' का नाम उच्चारण करते, नाचते-भजनकरते देव मन्दिरों की प्रदक्षिणा(परिक्रमा) करते भगवान् विश्वनाथ को प्रणाम कर दीन, अनाथ व अपंगों को वहाँ धन दान देकर पुनः विश्वेश्वर का दर्शन किया और स्तोत्र पाठ करते-करते अगस्त्य ऋषि के आश्रम

(अगस्त्यकुण्डा महाल) के समीप गोदावरी (गोदौलिया) तीर्थ पर पहुँचे, जहाँ पर अगस्त्य मुनि 'शिवलिंग' की स्थापना कर कुण्ड खुदवाकर शतरुद्रीय सूक्त का जप करते हुए तपस्या रत थे।

देवताओं ने सूर्य की भांति देदीप्यमान ऋषिको देख, दूर से ही उन्हें प्रणाम किया। अगस्त्य ऋषि के अंग प्रत्यंग का तेज मानो बड़वानल के समान उन्हें दिखाई दे रहा था। यह दृश्य देखकर देवतागण सोचने लगे कि 'यह साक्षात, बड़वानल की मूर्ति तो नहीं हैं, इनका इतना तेज है मानों सूर्य देव व अग्नि भी इनसे संतप्त हो रहे हैं। इनके तेज के आगे बिजली ने मानों अपनी चपलता को छोड़ दिया है।

आश्रम का वर्णन

देवता आश्रम की शोभा एवं व्यवस्था का वर्णन करते हुए आपस में कहने लगे कि यह आश्रम (स्थान) धन्य है जहाँ चारो ओर जीव-जन्तु अपने स्वाभाविक (दुश्मनी) को छोड़कर सत्वगुण से पूर्ण हैं। जरा इन हाथियों को देखिये जो अपने सूँड़ से निर्भय हो सिंह के शरीर को सहला रहे हैं। सिंह भी अपने केसरों (आयलों) को फटकार कर शरभ की गोद में सो रहा है। खड़े रोयें वाला शूकर (सूअर) अधिक बलवान होते हुए भी मोथा घास को देखते हुए अपने झुण्ड को छोड़ बनैले कुत्तों के साथ विचरण कर रहा है। और यहाँ की भूमि को नहीं खोद रहा है क्यों कि वह जानता है कि 'काशी' की सम्पूर्ण भूमि 'लिंग' रूप है। उधर की ओर देखो तेन्दुआ शूकर के बच्चे को गोद में लेकर उससे खेल रहा हैं, हिरण के बच्चे बघिन के बच्चों को हटाकर अपने फेनैले मुँह से उसका दूध पी रहे हैं। बन्दर अपनी उंगलियों से भालू की जूओं (कीड़ों) को उसके बड़े-बड़े बालों के बीच से निकाल कर उसे सुख पहुँचा रहे हैं। उधर वे सब लाल मुख और काले मुख वाले लंगूर अपने जति स्वभाव को त्याग कर एक ही स्थान पर क्रीड़ा कर रहे हैं। इस ओर सब शशक (खरहे) हुंड़ारों की पीठ पर सवार हो खेल

रहे हैं। मूस (चूहे) भी अपना मुंह हिलाते हुए बिल्ली के कानों को खुजला रहे हैं। बिलार भी 'मोर पीछ' के नीचे बड़े सुख से सो रहा है। इधर देखो सर्प अपने गले को मोर की सुन्दर गर्दन पर रगड़ रहा है। नेउर भी अपने बैर को छोड़कर सर्प के फन पर उछल-कूद कर रहा है। सर्प भी सामने घूमते चूहों को देखकर उन्हें खा नहीं रहा है, और चूहा भी सर्प से नहीं डर रहा है। बियाती हुई हरिनी को देख, वह देखो बाघ भी दया भाव दिखाने के लिए दूसरी ओर चला जा रहा है। मृग तो व्याध (बहलिये) को धनुष लिए देखकर भी निर्भय हो रहा है। रोहित मृग बनैले भैंसे से खेल रहा है और वह चमरी मृग (सुरहगाय) चुपके से शबरी की पूँछ से अपनी पूँछ की मिलान कर रहा है। उधर देखो वे गवय मृग (गवा) और सोही दोनों अपने बैर भाव को छोड़ ऋषि के तेज-प्रताप के कारण एक ही स्थान पर बैठे हुए हैं। मेढ़े भी लड़ाई की मुद्रा त्यागे हैं। सियार भी हरिन के बच्चों को अपने हाथ से सहला रहे हैं। बाज पक्षी भी बटेर को देख मुँह फेरे बैठा है। मदिरापान करने वाले लम्पट (आदमी) दूसरे जन्म में भौंरा बनकर इधर-ऊधर घूमते हैं वे भी यहाँ निर्द्वन्द भ्रमण कर रहे हैं।

देवतागण आपस में बात करने लगे कि पुराणों में कहा गया है कि "मांस भोजी व मदिरा पान करनेवाला 'शिव-भक्त' नहीं होता अर्थात् इन्हें 'शिव' की भक्ति व पूजा से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अतः ये सब भ्रांतिवश बार-बार भौंरे की योनि व्यतीत करते और इस प्रकार नरक को भोगते रहते हैं"। बिना 'महादेव' की कृपा के किसी की भ्रान्ति मिटती नहीं अतः मालूम होता है कि ये भौंरे 'शिव' के तत्वज्ञान के बिना इधर-उधर घूम रहे हैं।

वेदव्यास जी ने सूतजी से कहा कि इस प्रकार आश्रम-वासी पशु-पक्षियों को ऋषि-मुनियों के समान आपसी जातीय एवं स्वभावगत वैर-भाव को त्यागे हुए देखकर देवताओं ने निश्चय किया कि यह

सब इस स्थान की ही कृपा है। यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे जीवों को अवश्य ही मरण काल में भगवान् 'विश्वेश्वर' तारकमन्त्र देकर इनका मोक्ष कर देते हैं। जो मनुष्य 'काशी' क्षेत्र की महिमा को समझ दृढ़ संकल्प कर यहाँ निवास करता है भगवान 'महेश्वर' उसे जीवित अवस्था में अथवा मृत्यु के समय अवश्य 'तार' देते हैं इसमें अब सन्देह नहीं रहा।

देवताओं ने आपस में कहा कि इसी लिए ज्ञानी मनुष्य अविमुक्त-क्षेत्र 'काशी' की महिमा को एक बार जान लेने पर उसे कभी नहीं छोड़ते। तथा वे क्षेत्र महिमा के ज्ञान मात्र से मुक्त हो जाते हैं और तिरयक-योनी वाले जीव भी काशी की महिमा को जाने बिना भी यहाँ शरीर त्याग देने पर वैसे ही मुक्त हो जाते हैं।

व्यास जी ने कहा कि इतना ही नहीं यहाँ काम वासना भी लोगों को विचलित नहीं कर पाती। देवताओं ने देखा कि सारस पक्षी सारसी के गलेपर अपना गला रखकर इतना निश्चल हो गया है कि मानों वह भगवान विश्वनाथ का ध्यान कर रहा है। हंसी अपनी चोंच से खुजलाकर कामाभिलाषी हंस को पंख से फटकार बताकर उसे अलग कर रही है। चकवा द्वारा चकई के छेकने पर मानो वह अपने क्रेंकित भाषा में कह रही है कि "हे कामुक श्रेष्ठ क्या यहाँ भी कामवासना लगी है? कुंज में बैठा कपोत गुटुरगू कर के आह्वानकर रहा है पर कपोती उसे मानो मनाकर अपने स्वर में कह रही है कि 'ध्यानावस्थित' मुनि सुन लेंगे" इस प्रकार उसे काम वासना से वह अलग कर रही है। मोर भी उसी 'ध्यान भंग' के भय से अपना कूजना छोड़ चुप बैठा है। और चकोर तो चन्द्रिका भोजी होते हुए भी वहाँ व्रत ही कर रहा है। सारिका भी इसी तत्व को समझकर शुकों को समझा रही है कि "जिस संसार रूपी सागर का कोई पारावार नहीं है उससे भी पार उतारने वाले 'महादेव' यही हैं", कोकिल भी अपनी कूक से यही कह रही है कि "कलि और काल 'काशी वासियों' का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।"

देवता लोग आश्रम के पशुपक्षियों की इस प्रकार की चेष्टा देखकर सोचने लगे कि "इस काशी से बढ़कर हमारा स्वर्ग भी नहीं है। स्वर्ग के देवताओं से उत्तम तो काशी के ये पशु-पक्षी इत्यादि हैं क्योंकि इन्हें पुनर्जन्म का भय ही नहीं है। देवताओं को तो पुनर्जन्म का दुःख भोगना ही पड़ता है। हम लोग स्वर्गवासी होते हुए भी काशी के पतितों से भी अपनी तुलना नहीं कर सकते क्योंकि काशी में किसी के पतन होने का भय ही नहीं रहता जब की स्वर्ग में हमारे पतन होने का सदा भय बना रहता है"।

देवताओं ने स्थिर किया कि "दूसरे स्थान पर विचित्र छत्र-छाया में रहकर निष्कंटक राज्य का भोग भोगने से काशी पुरी में यदि महीने भर उपवास भी करके रहना पड़े तो अच्छा है। काशी में शशक व मशक को भी जो उत्तम पद बिना परिश्रम के मिल जाता है वह पद अन्यत्र 'अष्टांगयोग' साधने वाले योगियों को भी नहीं मिलता। काशीवासी रंक (निर्धन) भी हमसे अच्छा है क्योंकि वह तो यमराज से भी निडर रहता है पर हम सब तो त्रिदश कहाकर भी एक विन्ध्य पर्वत के कारण इस दुर्दशा को प्राप्त हो (इधर से उधर घूम रहे हैं"।

देवताओं ने पुनः कहा कि 'ब्रह्मा जी के एक प्रहर बीतने पर लोकपाल, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नारायण, इन्द्र बदल जाते हैं किन्तु यहाँ तो काशी वासी जीव का विनाश तो ब्रह्मा के सौ वर्ष बीतने (कल्प परिवर्तन) पर भी नहीं होता। अतः सबको चाहिये कि प्रयत्न करके काशी में उत्तम कर्मों को करें। काशी में जो सुख है वह सुख समस्त ब्रह्माण्ड मण्डप में कहीं भी नहीं है (यदि ऐसा न होता तो फिर 'काशी' की चाहना लोगों को क्यों बनी रहती)। सैकड़ों जन्म के बटोरे हुए पुण्य के फल से ही लोगों को काशीपुरी में निवास का स्थान मिलता है।

देवताओं ने आगे कहा कि काशी में यदि भगवान त्रिलोचन

किसी से रुष्ट हो जायें तो उसे सिद्धि कदापि नहीं मिल सकती अतः सदा शरणागत-वत्सल भगवान् 'विश्वनाथ' का ध्यान करते रहना चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में चारो पुरुषार्थ पूर्ण रूप से जिस प्रकार काशी में प्राप्त होते हैं वैसे अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलते।

आलस्य में भी यदि कोई अपने घर से 'विश्वनाथ' के मन्दिर तक जावे तो उसे पद-पद में अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिल जाता है। और जो मनुष्य उत्तरवाहिनी 'गंगा' में स्नान कर बड़ी श्रद्धा से विश्वनाथ के दर्शन के लिये जाता है उसके पुण्य का वर्णन ही करना कठिन है अर्थात् उसको इतना पुण्य मिलता है कि वह कभी समाप्त ही नहीं होता। पंचतीर्थ का दर्शन करने के वाद विशेश्वर का दर्शन एवं श्रद्धापूर्वक स्पर्शन-पूजन कर धूप-दीप इत्यादि का दान कर प्रदक्षिणा करे, स्तोत्रपाठ, जप, नमस्कार कर नृत्यमग्न हो 'देव-देव ! शम्भो ! शिव ! शिव ! धूर्जटे ! नीलकण्ठ ! ईश ! पिनाकिन् ! शशिशेखर ! त्रिशूलपाणे ! विशेश्वर हमारी 'रक्षा करो-रक्षा करो' ऐसा कहे। फिर मुक्ति मण्डप में आधा निमेष वैठे, वहाँ हो रही धर्म कथा को सुने। इस प्रकार के नित्य कर्मों को कर अनुष्ठान, अतिथि-पूजन एवं परोपकार आदि कर्म करने से 'धर्म' होता है। जिस प्रकार से शुक्लपक्ष में कला-कला 'चन्द्र' बढ़ता है उसी प्रकार काशी में रहनेवालों की धर्मराशि भी पग-पग पर बढ़ती रहती है इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये।

'धर्म'

यह निर्विवाद है कि लोगों को 'धर्म' रूपी वृक्ष की छाया में रहना चाहिये अर्थात् 'धर्म' बिना किसी का रक्षण नहीं हो सकता। इस 'धर्म' रूपी वृक्ष का वीज 'श्रद्धा' है जो कि ब्राह्मणों के चरणोदक से सींचा जाता है, इसकी शाखायें चौदहों विद्याएँ हैं, इसके पुष्प अर्थ हैं और इसके दो फल, 'काम' तथा 'मोक्ष' हैं। इस काशीधाम में सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली माता 'भवानी' अन्नपूर्णा

विराजती हैं। सब कामनाओं की पूर्ति करनेवाले 'ढुण्ढिराज' गणेशजी भी यहीं हैं और अन्त समय में सब जीव-जन्तुओं को तारकमन्त्र देकर इस संसार के बन्धन से मुक्त कराने वाले भगवान 'विश्वनाथ' भी सदा यहीं वास करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि काशी में 'धर्म' अपने चारों हाथ-पैरों के बल सदा खड़ा रहता है। अर्थ भी अनेक प्रकार का है यहाँ पर 'काम' सब सुखों को आश्रय देता रहता है वास्तव में सुख की सभी वस्तुएँ इस काशी में मिलती हैं। अस्तु जिस काशी में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने के लिए हीं विश्वनाथ मूर्त रूप में विद्यमान हैं उस काशी में भला कोई वस्तु दुर्लभ कैसे हो सकती है चूँकि काशी में 'विश्वनाथ' अखण्ड सच्चिदानन्द साक्षात् विश्वरूप में हैं इसी से इस काशी के समान त्रैलोक्य भर में कोई दूसरा स्थान नहीं है।

पर्णकुटी

ऐसी बातें आपस में करते-करते देवता लोग अगस्त ऋषि की पर्णकुटी (लता-पत्र फूस) की झोपड़ीके समीप पहुंचे जहाँ पर वेदाध्यायी बटु (ब्रह्मचारी) अधिक संख्या में थे और वहाँ का वातावरण बड़ा ही सुगन्धमय था। वहाँ ऋषिकन्याओं से सात्रां की अंजुरी प्राप्त करने की आशा से मुख में कुशा को दबाये मृग छौने इधर-उधर घूम रहे थे। पर्ण कुटी के पास के वृक्षों पर लटकते हुए देंववल्कल, कोपीन ऐसे लग रहे थे मानों वे विघ्नरूप इन मृगछौनों (मृगा के बच्चों) को फसाने के लिए जाल के समान लटक रहे हों। व्यास जी ने कहा कि पर्ण कुटी के आंगन में पतिव्रताओं में मुकुटमणि के समान भासमान 'लोपा-मुद्रा' (अगस्त ऋषि की पत्नी) के चरण चिन्हों को देंखकर देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् समाधि की समाप्ति पर कान में अक्ष (रुद्राक्ष माला) लटकी है। तथा योगासन पर विराजमान, ब्रह्मा के समान श्रेष्ठ अगस्त्य मुनि को सामने देख इन्द्र आदि देवता बहुतही ऊँचे

स्वर में 'जय हो जय हो, कहने लगे। इतना सुनते ही सामने देवताओं को देखकर ऋषि उठ खड़े हुए और उन्हें यथोचित स्थान पर बैठाया तथा उन्हें आशीर्वाद देकर उन लोगों के आने का कारण पूछा।

व्यासजी ने सूत जी से कहा कि जो व्यक्ति इस परम पवित्र कथा को सुनते हैं अथवा व्रती, श्रद्धालु लोगों के समक्ष पढ़ते हैं वे मनुष्य ज्ञान में अथवा अज्ञान में किये गये पापों से मुक्त हो कर 'हंसवर्ण' यान (विमान) पर चढ़कर निश्चय ही 'शिवपुर' (शिवलोक) को चले जाते हैं।

इस प्रकार यह स्कन्दपुराण के चतुर्थ खण्ड के पूर्वार्द्ध में 'देवताओं' के 'अगस्त्याश्रम गमन' नामक ३ (तृतीय) अध्याय की कथा का भाषा में वर्णन किया गया।

—*—

अध्याय ४

पातिव्रत धर्म

श्री वेदव्यास जी ने सूतजी को आगे बताते हुए कहा कि महर्षि अगस्त्य की बातें सुनकर देवतागण अपने साथ आये हुए 'गुरू बृहस्पति जी' की ओर आदर की दृष्टि से देखने लगे।

देवताओं का अभिप्राय समझकर गुरू बृहस्पतिजी ने कहा कि 'हे महाभाग ! अगस्त्य जी ! आप बड़े लोगों के माननीय हैं, आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं। देवतागण आपकी शरण में आये हैं इनका कार्य आपको करना है क्योंकि आपकी मर्यादा सब आश्रम, पर्वत, वन के तपोनिधियों से निराली है। आप पर 'तपोलक्ष्मी' और 'ब्रह्मतेज' स्थिररूप से विराजमान हैं, पुण्यश्री भी आप पर पूर्णरूप से शोभायमान है। साथ ही उदारता और मानवता की आप मूर्ति हैं।

जिसकी कथा से लोक में लोगों को पुण्य मिलता है वह आपकी सहधर्मिणी-कल्याणी पतिव्रता लोपामुद्रा शरीर की छाया के समान

आपके समीप विराजमान हैं। अरुन्धती, सावित्री, अनसूया, शांडिल्या, सती, लक्ष्मी, शतरूपा, मेनका, सुनीति, संज्ञा आदि पतिव्रताओं में निश्चित ही यह लोपामुद्रा श्रेष्ठ मानी जाती हैं।

लोपामुद्रा के पातिव्रत का वर्णन

देवगुरु बृहस्पति जी अगस्त्य ऋषि से कहने लगे कि हे मुने! आपके भोजन कर लेने पर ही यह भोजन करती हैं, आपके बैठने पर ही बैठती हैं, आपके सोजाने के पश्चात ही सोती हैं और आपके

उठने से पहले ही उठ जाती हैं, बिना अलंकार धारण किये आपके सामने नहीं आतीं, आपके बाहर चले जाने पर कभी अपना श्रृंगार नहीं करतीं दूसरे पुरुष का नाम लेना तो दूर रहा। जब आप क्रुद्ध होकर कुछ कहते हैं तो यह आपको उसका उत्तर नहीं देती, आपके शासन का प्रतिवाद नहीं करतीं, जब आप कहते हैं कि 'यह काम करो' तब 'हाँ स्वामिन्' हुआ ही समझिये, कहती हैं। आपके बुलाने पर तत्काल अन्य कार्य छोड़कर आपकी सेवा में उपस्थित होती हैंऔर मधुर वचनों में कहती हैं कि 'नाथ' दासी को किस लिए पुकारा है?

आज्ञा देने की कृपा करें। यह देवी अधिक देर तक न तो द्वार पर खड़ी रहती हैं और न देर तक बैठती ही हैं। आपके दिलाये बिना किसी को कोई वस्तु देती भी नहीं। पूजा की सभी सामग्री कुश, पत्र, पुष्प, अक्षत आदि स्वयं एकत्रित करके रखती हैं। आपको किस समय किस वस्तु की आवश्यकता होगी उस समय उस वस्तु को पहले से लिये हुए, प्रसन्न चित्त से यह आपकी प्रतीक्षा किया करती हैं। यह आपके के जूठन-मिठाई, अन्न और फल आदि को स्वामी का दिया हुआ प्रसाद समझकर लेती हैं। ऐसा करने से 'लक्ष्मी जी' प्रसन्न होती हैं। —(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

हे मुनि सुनिये यह पतिव्रता लोपामुद्रा देवता, पितर, अतिथि, सेवकवर्ग, गऊ, और भिखारियों को दिये बिना स्वयं भोजन नहीं करतीं। आप की आज्ञा के बिना कभी कोई व्रत अथवा उपवास भी नहीं करतीं। जब कभी आप सुखपूर्वक निद्रा में रहते हैं या सुखपूर्वक बैठे रहते हैं अथवा किसी प्रकार के विहार में लगे रहते हैं तो गृह का अति आवश्यक एवं अन्तरंग कार्य होने पर भी यह आपको कष्ट नहीं देतीं। रजस्वला होने पर तीन दिन तक आपके सामने नहीं आतीं जिससे आपको इनका मुख दिखलायी न दे जाय और जब तक स्नान कर पवित्र नहीं होतीं तब तक आपको अपना शब्द भी नहीं सुनातीं। ऋतु स्नान के पश्चात् पहले आपका (स्वामी) ही मुख देखती हैं दूसरे का नहीं और जब कभी आप आश्रम में नहीं रहते तब मन में आपका ध्यान कर 'सूर्य' का दर्शन कर लेती हैं।

बृहस्पति जी ने आगे कहा कि हे मुने! आपकी यह पतिव्रता पत्नी आपके दीर्घ आयुष्य की कामना करते हुए हरदी, केसर, सिन्दूर काजल, चोलिया, ताम्बूल हाथ-कान आदि में सौभाग्य के आभूषण तथा केशों का झारना-बांधना कभी नहीं त्यागती। आपकी यह पतिव्रता सहधर्मिणी कभी भी रजकी तथा सत्कर्म के विरुद्ध तर्क करने वाली, पाखण्डी, और दुर्भागिनी स्त्री को अपनी सखी नहीं बनातीं।

पति से द्वेष रखने वाली स्त्री से तो यह कभी बात नहीं करतीं। यह कभी अकेले भी नहीं रहतीं। यह साध्वी ओखली, मूसल, बढ़नी (झाड़ू), सिल, जांता और डेवढ़ी पर कभी भी नहीं बैठतीं। सम्भोगकाल को छोड़कर यह कभी भी आप से ढिठाई नहीं करतीं। जो-जो वस्तु आपको प्रिय है वही इन्हें भी प्रिय है।

पतिव्रता स्त्रियों का एक मात्र व्रत एवं धर्म पति-पूजा करना उनकी आज्ञा का उल्लंघन न करना तथा सेवा करना है। पतिव्रता स्त्री क्लिव (हिजड़ा), दुःख को प्राप्त, रोगग्रस्त, वृद्ध, सुस्थ एवं दुःस्थ चाहे कैसा पति क्यों न हो उसे कभी नहीं छोड़ती। स्वामी के हर्ष में हर्ष, विषाद (दुःख) में विषाद, मानती हैं तथा सम्पत्ति और विपत्ति के समय एक समान भाव रखती हैं। घी, लवण (नमक), तेल इत्यादि के समाप्त हो जाने पर 'नहीं है', ऐसा कह कर पतिव्रता अपने पति को कभी कठिनाई में नहीं डालतीं।

बृहस्पति जी ने आगे बताया कि पतिव्रता को जब कभी तीर्थ स्नान की इच्छा हो तो उसे चाहिये कि अपने पति के चरण धोकर 'चरणामृत' पान करले क्योंकि स्त्रीजाति के लिए 'महादेव' और विष्णु से भी बढ़कर उसका पति ही होता है। जो स्त्रियाँ पति की बात की उपेक्षाकर व्रत-उपवास आदि करती हैं वह पुण्य प्राप्ति के स्थान पर पति का आयुष्य ही कम करती हैं और इस प्रकार अन्त में वे नरक गामिनी होती हैं। जो स्त्रियां पति के कड़े वचनों का क्रुद्ध स्वर में उत्तर देती हैं वे अगले जन्म में 'गाँव में "कुतिया" या निर्जनवन में "सियारिन" होती हैं। स्त्रियों का एक ही नियम है कि वह पति के भोजन करने के पश्चात ही भोजन करे। स्त्रियों को उच्चासन पर न बैठना चाहिये और न पराये घर जाना चाहिये तथा न कभी लज्जा उपजाने वाली बातें ही करनी चाहिये। न कभी किसी को अपवाद (झूठ) ही लगाना चाहिये और कलह को तो दूर से ही नमस्कार करना चाहिये। जो दुर्बुद्धि कामिनी स्त्री अपने स्वामी

को छोड़ कर दूसरे के साथ कुकर्म करती है वह दूसरे जन्म में पेड़ के खोढरे में (खोखले) में सोनेवाली 'उलूकी' होती है। जो स्त्री स्वामी के मारने पर उन्हें भी स्वयं मारने की इच्छा रखती है वह अगले जन्म में बाघिन अथवा बिलारी होती हैं। जो स्त्री दूसरे पुरुष को कटाक्ष दृष्टि से देखती है वह ऐंची तानी (कानी) होती है। जो स्त्री पति को न देकर स्वयम् सब मिष्ठान्न खा जाती है वह अगले जन्म में 'ग्राम्य सुकरी' (सूअरी) होती है अथवा अपनी ही विष्ठा खाने वाली 'चमगीदड़ी' होती है। जो स्त्री अपने पति को 'रेरी' मारकर 'तू' कहती है वह निश्चय ही अगले जन्म में गूँगी होती है, और जो स्त्री सौत से डाह किया करती है वह बारम्बार 'दुर्भगा' होती है। जो स्त्री पति की दृष्टि बचाकर पर पुरुष की ओर देखती है वह अगले जन्म में कानी, कुरूपा और कुमुखी होती हैं।

बृहस्पति जी ने पतिव्रत धर्म का वर्णन करते हुए आगे कहा कि जो स्त्री बाहर से आते हुए पति को देखकर प्रेमपूर्वक जल, आसन, ताम्बूल, पंखा, आदि वस्तु लेकर तथा पांव इत्यादि दबा कर उनकी सेवा करती हैं और मधुर वचनों से यथा समय उनके मन को प्रसन्न करती हैं उसने त्रैलोक्य को प्रसन्न किया समझना चाहिये। पिता, भाई और पुत्र ये सब 'परिमित' सुख देने वाले होते हैं परन्तु पति तो 'अपरिमित' सुख का दाता होता है अतः उसका सदा पूजन करना पतिव्रता स्त्री का धर्म है। पति ही स्त्री का देवता, गुरु, धर्म, तीर्थ और व्रत इत्यादि सब कुछ है अतः उसे सबको छोड़ उसी की पूजा-उपासना करनी चाहिये।

जिस प्रकार जीव (प्राण) के निकलते ही शरीर अपवित्र हो जाता है वैसे ही पति विहीन (विधवा) स्त्री चाहे स्नान भले किये हो पर वह सदा अशुद्ध मानी जाती है। सब अमंगलों से बढ़ कर अमंगल की मूर्ति विधवा होती हैं क्योंकि किसी कार्य के प्रारम्भ में यदि 'विधवा' दिखाई दे तो उस कार्य को असफल ही हुआ जानना

चाहिये। अस्तु विद्वान लोग सब अमंगलों से रहित 'माता' को छोड़ अन्य विधवा के आशीर्वाद को सर्प के समान समझ कर त्याग देवें।

कन्याओं के विवाह की बेला (समय) में ब्राह्मण लोग यही आशीर्वाद देते हैं कि "पति के जीते जी अथवा मर जाने पर भी तुम पति की सदा सहचरी बनी रहो।" जिस प्रकार 'परछाहीं' देह की, 'चन्द्रिका'-चन्द्रमा की, 'बिजुरी'-मेघ की सहचरी होती है ठीक उसी प्रकार से स्त्री को अपने पति की सहचरी बने रहना चाहिये। जो नारी अपने पति के साथ अपना प्राण त्यागने (सती होने) के लिये घर से निकल कर 'श्मशान' तक जाती है तो उस समय उसके एक-एक पग पर 'अश्वमेघ यज्ञ' करने का फल प्राप्त होता है। जिस प्रकार मदारी (कालग्राही) सर्प को उसके बिल में से खींच लेता है उसी प्रकार पतिव्रता स्त्री भी यमदूतों से छीन कर अपने प्राणनाथ को नरक के स्थान पर स्वर्ग में ले जाती है। यमराज के गण 'सती' को देखते ही उसके घोर पापी पति को तत्काल छोड़कर दूर भाग जाते हैं। यमदूत यही कहते हैं कि 'हम सब पतिव्रता को सामने आती देख उससे इतना भय खाते हैं जितना कि 'अग्नि' अथवा 'ब्रिजुरी' से नहीं डरते। पतिव्रता को देख कर 'तपनदेव' (सूर्य) तथा 'तापिन और दहन देव' (अग्नि) भी जलने लगते हैं। अर्थात् सभी प्रकार के तेज थर्राने लगते हैं।

पतिव्रता स्त्री के शरीर में जितने रोम होते हैं उतने अयुत कोटि वर्ष तक वह अपने पति के साथ स्वर्ग में सुख भोगती है। इस संसार में वह माता-पिता धन्य हैं जिनकी पुत्री पतिव्रता होती है और वह पति भी धन्य है जिसके घर में पतिव्रता पत्नी वास करती है। पतिव्रता के बल से उसके माता के वंश के, पिता के वंश और पति के वंश के तीन-तीन पीढ़ी के पितर स्वर्ग का सुख भोगते हैं।

दुष्चरित्रा स्त्री अपने शील-भंग होने के कारण पिता, माता और

पति तीनों कुलों को पतित कर देती हैं और स्वयम् भी इस लोक और परलोक में दुःख भोगती हैं।

पतिव्रता स्त्री के चरण जहाँ-जहाँ पृथ्वी पर पड़ते हैं वहाँ-वहाँ की भूमि अपने को भार रहित समझती है। सूर्य, चन्द्र और वायु भी पतिव्रता को डरते-डरते केवल अपने को पवित्र करने के हेतु उसे स्पर्श करते हैं। जल (देव) भी सदा पतिव्रता स्त्री के शरीर का स्पर्श कर समझते हैं कि—"आज हमारी जड़ता दूर हो गई और आज हम दूसरों को पवित्र करने योग्य हो गये।" रूप और सुन्दरता से भरी स्त्रियाँ तो प्रायः घर-घर रहती हैं परन्तु पतिव्रता स्त्री तो भगवान 'विश्वेश्वर' की कृपा से ही किसी-किसी के घर में मिलती और वास करती हैं। पत्नी ही 'गृहस्थ' होने को 'जड़' (बीज) है और सब सुख का मूल भी वही है अतः सब धर्मों के फल मिलने का कारण पत्नी ही का मानना चाहिये, वही वंश को बढ़ाने वाली होती है।

एक मात्र पत्नी ही की सहायता से इह लोक और परलोक दोनों ही जीते जा सकते हैं क्योंकि पत्नी विहीन गृहस्थ 'देवकार्य', 'पितृकार्य' और अतिथि 'सत्कारादि' कोई भी कर्म करने का अधिकारी नहीं हो सकता। जिसके गृह में 'पतिव्रता नारी' का वास रहता है वास्तव में वही 'गृहस्थ' है अन्यथा दूसरी-दूसरी स्त्री 'जरा राक्षस' की भाँति पग-पग पर पति को भक्षण करती रहती है। जिस प्रकार गंगा स्नान करने से शरीर पवित्र होता है उसी भाँति पतिव्रता की शुभ-दृष्टि पड़ जाने से भी देह पवित्र हो जाता है। पति की मृत्यु हो जाने पर स्त्री यदि किसी कारण से सती न हो सके तो भी उसे शुद्ध रीति से अपने शील की रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि 'चरित्रभ्रष्ट' हो जाने से वह परम पतित हो जाती है। फिर वह स्वयं ही पतित नहीं हो जाती वरन् उसके पति, माता, पिता, भाई-बन्धु सभी स्वर्ग सुख से वंचित हो जाते हैं। विधवा होने पर जो नारी पवित्रता के साथ अपना वैधव्य व्यतीत करती है वह मृत्यु होने पर अपने पति से जाकर स्वर्ग में मिलती है और उनके साथ सुख भोग करती है।

विधवा के कर्म

विधवा स्त्री के चोटी बाँधने से उसका पति बंधन में पड़ता है अतः उसे अपने बाल मुड़वा देने चाहिये। विधवा को रात-दिन में एक बार ही आहार (भोजन) करना चाहिये। विधवा स्त्री को त्रिरात्रि, पंचारात्रि, पक्षव्रत, मासोपवास, चान्द्रायणव्रत, प्राजापत्य पराक—तप्तकृच्छ इत्यादि व्रतों को करते रहना चाहिये। जब तक प्राण अपने से न निकल जाय तब तक 'जव' इत्यादि अन्न, फलाहार, शाक (साग) भक्षण करे अथवा दुग्धपान कर अपनी जीवन यात्रा को पूर्ण करे। पलंग पर सोने वाली विधवा पति को पतित बना देती है। इसलिये पति की सुखाभिलाषिणी विधवा को भूमि पर ही सोना चाहिये। विधवा को अपने शरीर में तेल, उबटन या सुगंधित द्रव्य कभी नहीं लगाना चाहिये। उसे प्रतिदिन अपने पति उनके पिता और पितामह का नाम-गोत्र कह कर कुश-तिल-जल से तर्पण करना चाहिये तत्पश्चात् पति समझ कर भगवान 'विष्णु' की पूजा करे और उनका पतिरूप में ध्यान करे। संसार में जो वस्तु अपने को प्रिय लगे अथवा जिस वस्तु को उसका स्वामी प्रिय मानता रहा हो उन सब द्रव्यों और वस्तुओं को 'पति प्रेम' में रत हो गुणशाली ब्राह्मण को दान कर देवे। विधवा नारी वैशाख, कार्तिक और माघ मास में कुछ विशेष नियमों को धारण करे। इन मासों में उसे स्नान, दान, तीर्थ यात्रा और बारम्बार 'विष्णु' का नामोच्चारण करना चाहिये। उसे चाहिये कि वैशाख मास में 'जल से भरे घड़े' का दान करे, कार्तिक में मन्दिरों 'घृत (घी) का दीपदान' और 'माघ' मास में धान्य और तिल का दान करे। ऐसा करने से उस विधवा को स्वर्ग में विशेष सुख प्राप्त होता है।

"विधवा स्त्री वैशाख मास में 'पौसरा', देवताओं के ऊपर 'जलधरी' (जल से भरा पात्र), 'पंखा', 'छाता', महीन 'वस्त्र' चन्दन एवं 'पादत्राण' (जूता-खड़ाऊँ), सुगन्धित 'पान', 'फूल', अनेक प्रकार के 'जलपात्र', 'पुष्पमाला' रसदार उत्तम 'फल' (अंगूर, अनार, सन्तरा

आदि) का दान इस मनोरथ को लेकर करे कि वह सब उसके 'पति-देव' को प्राप्त हो" ।

कार्तिक मास में एक अन्न (जव आदि में से किसी एक का) भोजन करे, बोड़ा, सेम, भंटा, सूरन न खावे, तेल न लगावे, मधु (शहद) कांसे के पात्र को प्रयोग में न लाये, और 'अचार' भी न खाये। यदि कोई विधवा स्त्री कार्तिक मास में 'मौन व्रत' करती है तो उसे मासव्रत के अन्त में 'घण्टा' दान करना चाहिये। पत्तल पर भोजन करने वाली को 'कांस्य' पात्र दान करना चाहिये। भूमि पर शयन करने वाली उत्तम तोशक आदि से सज्जित 'शय्यादान' करे, फल छोड़ने पर उत्तमोत्तम 'फल', रस का त्याग करने पर वही 'रस' का दान करे। जो अन्न त्यागे हो वह अन्न, अथवा शालिधान्य (चावल), यदि सम्भव हो सके तो उत्तम 'गऊ' का दान करे। यदि इतना सब दान करने की सामर्थ्य न हो तो केवल मन्दिरों में घृत के 'दीप' का दान करने से उक्त वस्तुओं के दान करने का उसे फल मिल जाता है।

बृहस्पति जी माघ मास के व्रत का वर्णन करते हुए कहने लगे कि सूर्य के उदय काल तक स्नान कर लेना चाहिये। ब्राह्मण, तपस्वी एवं सन्यासी को पकवान, लड्डू, फेनी, बड़ा इंडरिका इत्यादि। घी में सने उत्तमोत्तम सुगंधित पदार्थों का भोजन करावे और शीत दूर करने के लिए उन्हें सूखे इंधन, रूई भरे पहनने के वस्त्र, दुपट्टा, तोषक, मजीठ के रंग में रंगे वस्त्र, रूईभरी रजाई, जायफल व लवंग युक्त सुगंधित पान, कम्बल, निर्वातगृह इत्यादि। कोमल पादत्राण, एवं सुगंधित उबटन इत्यादि का विधवा स्त्री दान करे। इसके पश्चात् महास्नान की विधि सम्पन्न कर (बदरीनारायण के आश्रम का प्रसिद्ध) घृतनिर्मित कम्बल दान करे। पूजा, अर्चन तथा गुगुल आदि से मन्दिर को पवित्र करे, मोटी बत्ती के वहाँ दीप जलावे और भाँति-भाँति के नैवेद्य भी लगाकर विधवा ऐसा ध्यान करे कि उससे 'पतिरूप भगवान प्रसन्न हों।'

इस प्रकार विधिपूर्वक 'वैशाख', कार्तिक एवं माघ मास में व्रत कर समय व्यतीत करे, यदि बैल पर चढ़े बिना प्राण न बचे तो प्राण त्याग दे परन्तु बैल पर विधवा को कदापि नहीं चढ़ना चाहिए। 'पतिव्रता' विधवा अपने पुत्र की आज्ञा लेकर ही सब कुछ करे ऐसी स्त्री उत्तम ही कही जाती हैं। उक्त नियमों का पालन करनेवाली पतिव्रतधर्म परायणा विधवा कभी दुःख नहीं भोगती अन्त में वह अपने 'पतिलोक' को चली जाती है। वह पति को देवता मानने वाली गंगा के समान पवित्र तथा 'शिव-पार्वती' के समान हो जाती हैं अतएव बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है कि ऐसी 'पतिव्रता' नियम का पालन करने वाली स्त्री की वे पूजा करें।

बृहस्पति जी ने इस प्रकार पातिव्रत धर्म की व्याख्या करते हुए आगे कहा कि हे लोपामुद्रें ! महामातः तुम पति के चरणारविन्दों को ही देखती रहती हो। हे देवी आज तुम्हारा दर्शन प्राप्त कर हम सबको गंगा स्नान का फल प्राप्त हो गया।

देवगुरू ने इस प्रकार महाभागा राजपुत्री 'लोपामुद्रा' की स्तुति (बड़ाई) कर उन्हें प्रणाम करने के बाद अगस्त्य ऋषि से कहा कि आप 'प्रणवरूप' हो और यह लोपामुद्रा 'श्रुतिरूप' हैं, आप साक्षात 'तप' हो और यह 'क्षमा' हैं, तिसपर से यह उग्र तपस्या करने पर आपको कोई भी वस्तु असाध्य नहीं हो सकती। आप से तो कुछ भी छिपा नहीं है फिर भी मैं निवेदन कर देता हूँ कि यह सब देवता लोग आपकी शरण में आये हैं। यह सौ 'अश्वमेध यज्ञों' के कर्त्ता एवं 'वृत्रासुर' के वध करने वाले 'इन्द्र' हैं, इनका आयुध 'वज्र' है। इन्हीं के द्वार पर अणिमादिक आठो सिद्धियाँ इनकी कृपा दृष्टि को जोहती रहती हैं। इनकी नगरी अमरावती में कामधेनु गऊओं के झुण्ड विचरण करतें हैं और वहां के निवासी सदा कल्पवृक्ष के नीचे सुख से निवास करते हैं इनके पुर में मार्गों पर चिन्तामणि रत्न सड़कों पर कंकड़ की भाँति ठोकर खाता है। और ये संसार के

योनिरूप अग्निदेव' हैं तथा यह 'धर्मराज' हैं। इस प्रकार से ये सब निर्ऋति, वरुण, कुबेर, वायु और रुद्रगण आदि हैं जो सांसारिक लोगों की कामनाओं के पूर्ण होने से लोक में पूजे जाते हैं।

बृहस्पतिजी ने आगे प्रार्थना करते हुए कहा कि ये सब देवता गण लोक कल्याण के हेतु आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं, आपके 'वचन' मात्र से ही वह लोक हितकारी कार्य सिद्ध हो सकता है। 'विन्ध्य' नामक एक पर्वत ने 'सुमेरु' पर्वत से ईष्या (डाह) करने के कारण अपने को आकाश मार्ग में अत्यधिक बढ़ा लिया है जिसके फलस्वरूप भगवान सूर्य का रथ रुक गया है।

हे मुनि इस संसार में जो लोग दूसरों से डाह कर के अपनी वृद्धि करना चाहते हैं, जो स्वभाव से रूढ़ हो दूसरों के मार्ग का इस प्रकार रोड़ा बनते हैं उन सबकी वृद्धि को रोकना ही धर्म है।

बृहस्पति जी के इस प्रकार के वचन सुन कर महामुनि बिना कुछ सोचे विचारे एक क्षण मौन रह कर बोले 'तथास्तु' (जैसा कह रहे हो वैसा ही होगा)। साथ ही यह भी कहा कि "मैं आप सब के कार्य को करूंगा"। इतना कहने के उपरान्त देवताओं को बिदाकर अगस्त्य मुनि स्वयम् ध्यानावस्थित होकर विचार करने लगे।

श्री वेदव्यास जी ने सूत जी से कहा कि जो स्त्री अथवा पुरुष इस 'पातिव्रत' अध्याय की उत्तम कथा को सुनते हैं वे पाप रूपी कंचुकी (केंचुरी) को छोड़कर इन्द्र की अमरावतीपुरी में चले जाते हैं।

कहा भी है—'करहिं पतिव्रत जे जगमाहीं, पति समेत सुरपुर जाहीं।
होई लोक में जस अरुनामा, अन्तकाल पावहिं परधामा।'

इस प्रकार स्कन्द पुराण के पूर्वार्द्ध में 'पातिव्रताख्यान' नामक ४ (चतुर्थ) अध्याय की कथा का भाषा में वर्णन किया गया।

—०—

अध्याय--५

अगस्त्य ऋषि का विलाप

श्री वेदव्यासजी ने सूतजी को आगे की कथा का वर्णन करते हुए कहा कि अगस्त्य ऋषि ने भगवान विश्वनाथ का ध्यान कर अपनी पत्नी लोपामुद्रा से कहा कि अयि वरारोहे ! देखो यह कैसी विडम्बना उपस्थित हुई। कहाँ यह कार्य और कहाँ हम मुनि-मार्गानुसारी, कोई तुलना ही नहीं। जिस इन्द्र ने खेल-खेल में समस्त पर्वतों के पक्ष (पंख) काट डाले क्या आज वह अकेले विन्ध्य पर्वत के अभिमान को चूर नहीं कर सकते। जिसके आंगन में कल्पवृक्ष हो जिसका अस्त्र वज्र, हो, जिसके द्वार पर स्वयम् सिद्धियाँ विराजमान हों, वही इन्द्र आज ब्राह्मणों से कार्य सिद्धि के लिए इस प्रकार से प्रार्थना करे यह महान आश्चर्य की बात है"

अगस्त्य मुनि आगे कहने लगे कि जिस दावानल के तेज के भय से समस्त पर्वत कांपते रहते हैं वही 'अग्नि' आज विन्ध्य का मान मर्दन

करने में असमर्थ क्यों हो रहा है ? उसकी वह दिव्य शक्ति आज कहाँ लोप हो गयी। समस्त भूतों को अपने नियन्त्रण में रखने वाले, दण्ड को धारण वाले प्रभु (यमराज) भी आज विन्ध्य को दण्ड देने में असमर्थ हो रहे हैं। आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, तूषितगण, विश्वेदेवगण, दोनों अश्विनीकुमार आदि अन्य सभी देवगणों में क्या विन्ध्य के अभिमान को चूर करने की शक्ति नहीं रही जो ये लोग मेरे पास आये। इन सबके दृष्टि मात्र से चौदहो भुवन का संचालन होता है फिर यह आज असमर्थ क्यों हो रहे हैं।

ओह ! कारण समझ गया। तत्वदर्शी मुनियों ने 'काशी' के सम्बन्ध में जो सुन्दर बातें कही हैं मुझे स्मरण हो आयीं। वह बात यह है कि 'काशी' वास करने वालों को अनेक विघ्नों का सामना क्यों न करना पड़े फिर भी वे 'मुमुक्ष' लोग (मोक्ष चाहने वाले) कभी 'काशी' को न छोड़ें। यही वह मुनि वाक्य है। हे कल्याणी। मेरे काशी वास में यह वहुत बड़ा विघ्न आज उपस्थित हुआ है। आज 'विश्वेश्वर' ही हमसे विमुख हो गये हैं ऐसा समझना चाहिये। नहीं तो मेरा 'काशीवास' भंग न होता। ब्राह्मणों के आशीर्वाद से से मिली हुई 'काशी' को भला कौन मोक्षाभिलाषी त्याग करना चाहेगा ? अहो ! जिस प्रकार विमूढ़बुद्धि (मूर्ख) अपने मनोहर ग्रास को फेंक कर हाथ चाटने का उपक्रम करता है उसी प्रकार की आज मेरी स्थिति हो गयी है।

अगस्त्य ऋषि पत्नी के समक्ष दुःख प्रगट करते हुए कहने लगे कि पुण्यरूपी 'काशी' का त्याग तो मूर्ख लोग ही करते हैं। क्या प्रत्येक वार गोता लगाने पर कमल कन्द मिलता है ? ठीक उसी प्रकार एक बार मिली 'काशी' पुनः नहीं मिलती। जन्मजन्मान्तरों के पुण्य प्रताप से मिली 'काशी' को छोड़कर पुनः मोहवश दुर्गति भोगने के लिए भला कौन 'काशी' छोड़ने की इच्छा करता है। कहाँ परमात्मा के परमपद का दर्शन करा देने वाली 'काशी' और

कहाँ सब प्रकार के दुःख देने वाले कार्य ! इमे समझ विद्वान (पंडित) लोग काशी का त्याग कर अन्यत्र कहीं नहीं जाना चाहते ! क्या कोंहड़े का फल कभी बकरे के मुख में समा सकता है।

अगस्त्य जी ने आगे कहा कि नाशवान मनुष्य परमपुण्य को प्रकाशित करनेवाली 'काशी' का परित्याग अपने पुण्य के नाश होने पर ही करता है ऐसा मेरे मनमें विचार उत्पन्न हो रहा है। जो मनुष्य अन्यत्र वास नहीं करना चाहते वे ही इस उत्तम कृति को देने वाली काशी में वास करते हैं इस प्रकार जो मनुष्य काशीवास के संकल्प को छोड़ता नहीं अर्थात् काशी में ही वास करता हैं उसे 'संसार रोग' से मुक्त ही समझना चाहिये। ऐसी पापविनाशिनी देवताओं को दुर्लभ, सदा गंगा की संगत देने वाली, संसार के बन्धन को काटने वाली, भगवान शंकर तथा भगवती पार्वती से अविमुक्त, त्रिभुवन से अतीत मोक्ष देने वाली माता 'काशीपुरी' को 'मुक्त' हुए पुरुष कभी नहीं छोड़ते। हे मनुष्यों ! बड़े पुण्य के पश्चात् बड़ी कठिनाई से मिली इस काशी को छोड़ कहाँ जाओगे। ओह ! लोग कैसे मूर्ख हैं जो पवित्र गंगाजल से मनोहर और प्रलय के समय भगवान महादेव के त्रिशूल के अग्रभाग पर बसी इस 'काशी' को छोड़ अन्यत्र जाने को सोचते हैं।

अगस्त्य जी बड़े उद्विग्न होकर आगे कहने लगे कि अरे लोगों ! मोक्षपद के विरोधी पापों को दूर भगाने वाली इस 'काशी' रूपी नौका को छोड़ कर शोकरूपी जल से भरे पापमय संसार सागर में क्यों गिरने जाते हो ? वेदविहित कर्म करने से, योगाभ्यस से, दान, उग्र तपस्या आदि के करने से यह 'काशी धाम' लोगों को नहीं मिलता। यह तो केवल ब्राह्मणों के आशीर्वाद से या भगवान विश्वनाथ की कृपा से ही सुलभ होता है। किसी स्थान पर अत्यधिक धन व्यय करने पर 'धर्म' मिल सकता है, किसी स्थान पर बहुत धन के दान करने पर 'अर्थ' और 'काम' की प्राप्ति भले ही हो जाय परन्तु 'काशी' में जिस प्रकार सहज ही 'मोक्ष' की प्राप्ति होती हैं वैसी अन्यत्र नहीं होती।

श्रुति, स्मृति तथा पुराण आदि के अनुशासनानुसार इस परम-पवित्र 'अविमुक्तक्षेत्र' की तुलना में कहीं भी दूसरा स्थान नहीं है। अस्तु इस अविमुक्त क्षेत्र (काशी) के शरण में आने को ही उत्तम पुरुषार्थ (कर्त्तव्य) कहा गया है। संसार प्रसिद्ध श्री जाबाली ऋषि ने ठीक ही कहा है कि "हे आरुणे! 'असी' नदी (अस्सी घाट पर) को 'इडा' नाड़ी और 'वरुणा' नदी की पिंगला नाड़ी कहा गया है इन्हीं दोनों 'इडा' और पिंगला के बीच 'सुषुम्णा नाड़ी' अविमुक्त क्षेत्र 'काशी' है। इन्हीं तीनों नाड़ियों से बनी यह 'वाराणसी' है। अतः इसी वाराणसी में समस्त जीवों के प्राण निकलने के समय स्वयम् भगवान् विश्वेश्वर उस जीव के कान में 'तारक' मन्त्र का उपदेश देते हैं जिससे वह जीव 'ब्रह्म' के समान हो जाता है।

तारकं ब्रह्मव्याचष्टे तेन ब्रह्म भवन्तिहि।
एवं श्लोको भवत्येष-आहुर्वै वेदवादिनः॥

यह श्लोक वेदवादी लोग कहते हैं अर्थात् यह बात वेद सम्मत है कि इस काशी क्षेत्र में भगवान भूतभावन जीव को स्वयं उपदेश देकर उसे मुक्ति देते हैं।

अगस्त्य ऋषि जी लोपामुद्रा से आगे कहने लगे कि हे देवी 'अविमुक्त' के समान दूसरा कोई क्षेत्र नहीं है, और न तो इसके समान कहीं किसी को उत्तम 'गति' ही मिलती है। 'अविमुक्तेश्वर' के समान दूसरा 'शिवलिंग' भी कहीं नहीं है इस बात को सदा सत्य मानना। ऐसे इस अविमुक्त क्षेत्र को त्याग कर जो लोग अन्यत्र निवास करने की इच्छा करते हैं उन्हें यही समझना चाहिये कि वे अपने हाथों में आई और मिली हुई मुक्ति को फेंक कर अन्य किसी वस्तु (पदार्थ) की प्राप्ति की खोज में कहाँ जा रहे हैं।

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ महात्मा अगस्त्य ऋषि जी ने वेद-पुराण की बातों का समर्थन करते हुए कि श्री विश्वनाथ के समान 'शिवलिंग' और 'काशी' के समान पुरी (स्थान) त्रैलोक्य में दूसरी नहीं है ऐसा

निश्चय करने के बाद 'श्री कालभैरव (विश्वेश्वरगंज के समीप) के समक्ष पत्नी सहित जाकर उन्हें प्रणाम किया और जोर से कहा कि हे 'कालराज' । आप इस काशीपुरी के स्वामी हैं इसी लिये मैं आपके यहाँ आपसे पूछने आया हूँ कि क्या प्रत्येक चतुर्दशी, प्रत्येक अष्टमी, प्रत्येक मंगलवार और प्रत्येक रविवार को फल-फूल-मूल के साथ मैंने आपकी पूजा नहीं की है । हे 'कालराज' मैं तो निरपराधी हूँ । अतः आप मुझे क्यों अपराधी ठहरा कर काशी से बाहर कर रहे हैं । आप उत्कट पापनाशिनी विकट स्वरूप धारण कर के 'मतडरो' ऐसा कह कर अपना हाथ फैला कर काशीवासी समस्त जीवों की रक्षा क्या आप नहीं करते । अतः मुझे आज क्यों बाहर कर रहे हैं । ऐसा विलाप करते हुए ऋषि अपनी पत्नी के साथ फिर दण्डपाणि (दण्डपाणि की गली कालभैरव के पूर्व में) के समक्ष गये और कहने लगे कि हे यक्षराज ! हे चन्द्रमा के समान शरीरवाले ! हे पूर्णभद्रनन्दन ! हे नायक ! हे 'काशीवासी रक्षक ! हे दण्डपाणे ! आप तो सभी तपस्याओं के कष्टों को जानते हैं तो फिर मुझे काशी से बाहर क्यों कर रहे हो ? हे देव ! आप ही काशीवासियों के अन्नदाता, प्राणदाता और मोक्षदाता हैं और आप ही भुजगेन्द्रहार तथा जटाकलाप इत्यादि से मरण के समय लोगों को भूषित करते (सजा देते हैं) हैं । आपके सम्भ्रम और उद्भ्रम नामक दोनों गण यहाँ के निवासियों की सब बातों और व्यवहारों को भली प्रकार जानने में कुशल हैं और दुष्टों को क्षणमात्र में काशी से बाहर कर देतें हैं अस्तु आपही बतायें कि मेरा कौन सा अपराध है जिससे मुझे आज काशी छोड़नी पड़ रही है ।

तत्पश्चात् ऋषि, ढुण्डिराज गणेश के समक्ष जाकर उन्हें प्रणाम कर कहने लगे कि हे प्रभो ढुण्ढिविनायक ! (ढुण्ढिराज की गली में) मेरी बात आप सुने, मैं अनाथ के समान विलाप कर रहा हूँ आज कोई मेरी रक्षा नहीं कर रहा है । आप सब विघ्नों का नाश करने वाले हो, सभी 'विघ्न' आप के शासन में रहते हैं, पापी लोग ही उनसे

आक्रान्त होते हैं तो क्या मैं भी उन्हीं के समान यहाँ रह रहा हूँ ।

चिन्तामणि विनायक (ईश्वरगंगी में), कपर्दी विनायक ( ) आशा विनायक (मीरघाट हनुमान मन्दिर में), गज विनायक (मछरहट्टा में भारभूतेश्वर के मन्दिर में 'राजविनायक से प्रसिद्ध है ।) और सिद्धि विनायक (मणिकर्णिका घाट पर अमेठी मन्दिर के समीप आप) सब पाँचो विनायक मेरी प्रार्थना को सुन लें—मैंने कभी किसी की निन्दा नहीं की है, और न किसी का अनभल (अनुउपकार) ही किया है, न मेरी बुद्धि में दूसरे का धन अथवा दूसरे की स्त्री का ही लोभ उपजा तो फिर आज यह किस पाप का फल मुझे भोगना पड़ रहा है ? मैंने तो सदा तीनों समय गंगास्नान किया है, नित्य विश्वनाथ का दर्शन किया है और प्रत्येक पर्वों पर सव प्रकार की यात्रा भी की है तो फिर आज मेरे समक्ष यह विघ्न क्यों उपस्थित हुआ है ?

अगस्त्य ऋषि घोर विलाप करते हुए कहने लगे कि—हे माता विशालाक्षी ! हे भवानी ! हे मंगले ! हे समस्त सौभाग्य को देने वाली सुन्दरी । ज्येष्ठेशि ! हे विश्वे ! हे विधे ! हे विश्वभुजे ! हे चित्र-घण्टे ! हे विकटे ! हे दुर्गे । तथा अन्य देवी गण आप लोगों को नमस्कार है । जो-जो काशीस्थ देवता हैं वे सभी हमारे साक्षी हैं वे आप सब सुन लें कि मैं अपने स्वार्थ के कारण 'काशी' को नहीं छोड़ रहा हूँ वल्कि देवताओं के प्रार्थना करने पर मैं परोपकार करने के लिए ही आज इस परम पवित्र 'काशी' का त्याग कर रहा हुँ । पूर्वकाल में दधीचि मुनि ने दूसरों के उपकार के लिए अपनी अस्थि (हड्डी) का दान दिया था, दानवेन्द्र (दानवों का राजा) बलि ने याचक (मागने वाले बावन भगवान) को तीनों लोक दे डाले थे, मधुकैटभ नामक दोनों असुरों (राक्षसों) ने परोपकार में अपना मस्तक कटवा दिया था और पक्षीराज गरुड़ भी विष्णु भगवान के वाहन सहचारी बने थे ।

इस भाँति विलाप करते समस्त काशी के देवी-देवताओं, मुनियों, बालकों, वृद्ध लोगों और अशेष मृण, वृक्ष, लता इत्यादि से विदा माँग कर 'काशीपुरी' की प्रदक्षिण कर वे काशी से बाहर निकले।

ऐसा कहा गया है कि समस्त शुभ लक्षणों से हीन, नीच कर्म को करनेवाला कोई मनुष्य यदि भगवान चन्द्रशेखर (विश्वनाथ) का दर्शन कर यात्रा प्रारम्भ करता है तो अवश्य ही उसका कार्य सिद्ध हुआ ही समझना चाहिए।

अगस्त्य ऋषि ने आगे कहा कि काशी में तृण, गुल्म, वृक्ष को होना बड़ा उत्तम माना गया है क्योंकि न तो वे कोई पाप करते हैं, न हीं कभी कहीं जाते हैं। परन्तु हाय! जंगम जीवों में सर्वोत्तम होकर हमको धिक्कार है जो हम सब 'काशी' को छोड़ अन्यत्र जा रहे हैं। इस प्रकार कहते हुए बारम्बार 'असी नदी' के जल को स्पर्श करते हुए और काशीपुरी की बड़ी-बड़ी अटारियों को देखते हुए अगस्त्य ऋषि नेत्रों को सम्बोधित करते हुए कहने लगे कि 'हे दोनों नयनों! तुम इस काशीपुरी को भली प्रकार से देख लो अन्यथा कहाँ तुम और कहाँ यह पुरी (रहेगी)। आज इस काशी की सीमा पर विचरण करने वाले भूतगण भले ही ताली बजा-बजाकर हँसे कि मैं काशी छोड़कर जा रहा हूँ पर क्या करूँ! हाय! परोपकार के
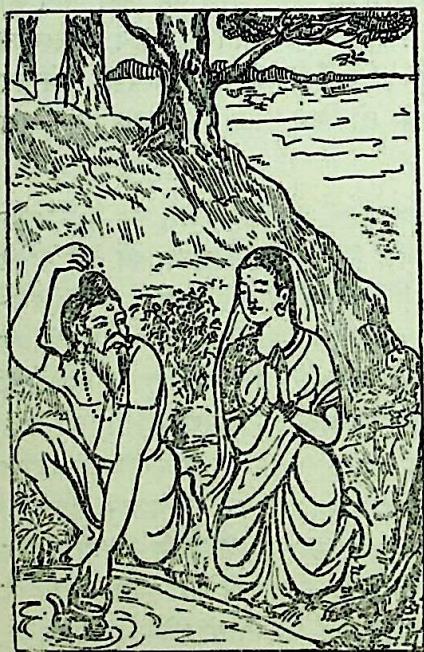
लिए इनकी हँसी भी सुननी पड़ रही है।

इस प्रकार बहुत विलाप करते हुए अगस्त्य ऋषि पत्नी सहित 'हे काशी ! हे काशी ! फिर आओ दर्शन दो' विरही की नाईं योंही कहते - कहते मूर्छित रहने के वाद चैतन्य होने पर अगस्त्य ऋषि 'शिव-शिव-शिव' कहते हुए बोले कि 'हे प्रिये चलो चलें। देखो ये देवगण कठिन हैं— त्रिभुवन के सुखदाता 'कामदेव' को त्र्यम्बक (शिव) के पास भेज कर इन्होंने जो किया वह तुम्हें ज्ञात है। मस्तक पर स्वेद (पसीना) धारण किये जब तक तीन-चार पग ऋषि आगे बढ़े त्यों ही 'पृथ्वी' भयवश संकुचित हो गयी।
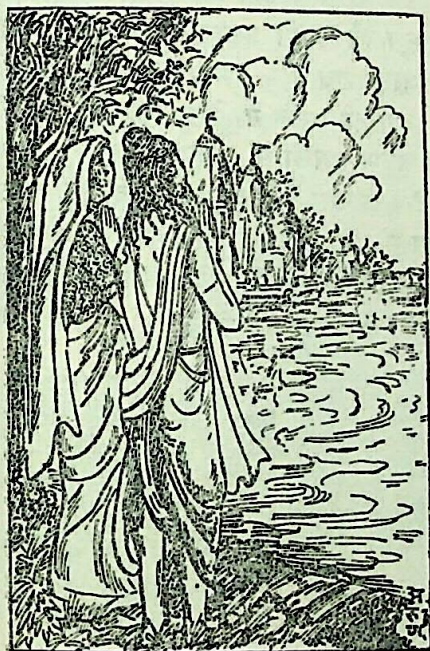
इस प्रकार अपने तपस्वी 'यान' (तपोबल से) से आधे निमेष (आधे पल से भी कम) में उन्होंने आकाश मण्डल के मार्ग को रोके 'विन्ध्यगिरी' को अपने सामने खड़ा देखा ! वह विन्ध्याचल भी 'वातापी' और 'इल्वक' का नाश करने वाले पत्नी सहित अपने गुरू 'अगस्त्य ऋषि' को अपने सामने देखकर काँप उठा।

तप, क्रोध, काशी विरह रूपी तीनों अग्नियों से प्रलयानल के समान

तीव्र जाज्वल्यमान अगस्त्य जी के स्वरूप को देखते ही वह अत्यन्त लघु (छोटा) रूप धारण कर मानों वह भूमि में छिपना चाहता है दण्डवत करते हुए बोला कि 'मैं किंकर हूँ मुझे आज्ञा देकर अनुगृहीत कीजिये'। इतना सुनकर अगस्त्य ऋषि ने कहा कि 'हे विज्ञ (विद्वान) विन्ध्य 'तुम सज्जन हो और मुझे भी अच्छी प्रकार से जानते हो अतः जब तक मैं पुनः लौटकर न आऊं तब तक तुम यों ही छोटे बने पड़े (लेटे) रहो।' तपोनिधान अगस्त्य मुनि ने ऐसा कहकर, अपनी पतिव्रता पत्नी के साथ अपने चरण कमलों से दक्षिण दिशा को सनाथ किया। ऋषि को चले जाते देख कांपता हुआ वह विन्ध्य बड़ी उत्कण्ठा के साथ उन्हें देखने लगा तथा सोचने लगा कि आज मेरा पुनर्जन्म ही हुआ समझो जो कि ऋषि शाप दिये बिना चले गये। और मेरा कुशल ही हुआ। आज मेरे समान कोई दूसरा धन्य नहीं है।

ठीक उसी समय कालज्ञ भगवान सूर्य के सारथी 'अरुण' ने घोड़ों को चलाया (हांका) और पहले की भाँति सूर्य देव की किरणों के संचार (फैलने) से संसार स्वस्थ (प्रसन्न) हुआ। आज नहीं तो कल और

कल नहीं तो परसों मुनि अवश्य पधारेंगे यही विचार करता विन्ध्य उसी प्रकार स्थिर हो पड़ा रहा। न तो आज तक मुनि लौटकर आये और न वह अब तक पुनः खड़ा ही हो सका।

जिस प्रकार दुर्जनों का मनोरथ रूपी वृक्ष कभी बढ़ने नहीं पाता उसी प्रकार विन्ध्य की भी इच्छा पूरी न हो सकी। जो नीच लोग दूसरे से डाह कर अपनी वृद्धि करना चाहते हैं उनकी वृद्धि तो क्या जितना डाह से पूर्व वे रहे वह भी समाप्त होकर कभी उतना भी पूरा नहीं हो पाता। ऐसे दुष्टों के मनोरथ पहले तो कभी सिद्ध ही नहीं होते और यदि दैववशात् कहीं सिद्ध भी हो गये तो उसका नाश ही हुआ समझना चाहिये। यही कारण है कि विश्वनाथ द्वारा इस संसार का कल्याण होता रहता है। अर्थात् वह अपने गणों द्वारा सभी दुष्टों का दमन करते रहते हैं। जैसे बाल-विधवा के स्तन उठकर भी हृदय में पुनः विलीन हो जाते हैं वैसे ही असज्जनों की सम्पत्ति भी कुछ ही समय में अपने कुल का नाश कर डालती है। जो कोई दूसरे के सामर्थ्य को समझे बिना अपनी शक्ति दिखलाने लगता है ठीक उसी भाँति यह विन्ध्य पर्वत भी
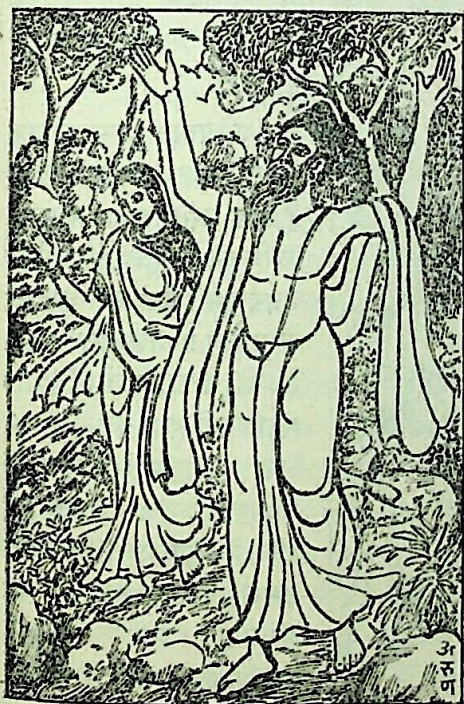
उपहास का विषय बन गया।

वेदव्यास जी ने सूत जी से आगे की कथा कहते हुए कहा कि अगस्त्य ऋषि के रमणीय गोदावरी नदी के तीर पर रहते हुए भी उनका काशी विरह शान्त नहीं हुआ ऋषि उत्तर दिशा से आनेवाले वायु को भी हाथ फैलाकर आलिंगन करते हुए उससे मानो काशी का मंगल पूछ रहे हों। इस प्रकार करते हुए कहने लगे कि हे लोपामुद्रे ! काशी की रचना की परिपाटी तो और कहीं भूतल में दृष्टिगोचर नहीं होती। क्योंकि वह ब्रह्मा की सृष्टि संरचना में तो रची ही नहीं गयी है। उस काशी के वियोग से दुःखी हो अगस्त्य ऋषि कहीं ठहरते, कहीं भागते, कहीं कुछ कहते, लरखराते, कहीं कुछ करते अर्थात् विक्षिप्त से हो गये थे।

भाग्यवान जिस प्रकार सुसमृद्धि का दर्शन करता है ठीक उसी प्रकारअगस्त्य ऋषि को विह्वल हो इधर-उधर घूमते देख सौ चन्द्रमा के समान प्रकाशमान 'महालक्ष्मी' ने उन्हें दर्शन दिया। महालक्ष्मी का दर्शन पाकर अगस्त्य ऋषि के हृदय में धधकती ज्वाला शान्त हुई और वे महालक्ष्मी को अपने समक्ष प्रत्यक्ष पाकर बड़े प्रसन्न हुए। ऐसा लग रहा था कि जैसे रात्रि में कमल संकुचित हो जाते हैं,

अमावास्या तिथि में चन्द्रमा नहीं दिखाई देता, क्षीर सागर में मन्दर-मन्थन का भय वना रहता है, इन्हीं के भय से मानों 'महालक्ष्मी' अपने पूर्व के स्थानों को छोड़ कर यहाँ निवास कर रही हों। जव माधव ने पृथ्वी को धारण किया था तभी से मानों 'सौत' की ईर्ष्यावश 'महालक्ष्मी' यहाँ अकेले निवास कर रही हों। सूकर रूप से त्रैलोक्य के भयङ्कर 'महासुर' का वध कर मानों वह यहीं (कोल्हापुर में) में वास कर रही हैं।

इस कोल्हापुर निवासिनी अभीष्ट फल देनेवाली महालक्ष्मी को समक्ष पाकर अगस्त्य ऋषि ने प्रणाम किया और अपने इष्ट (प्रिय) वचनों से देवी को प्रसन्न करते हुए उसकी स्तुति करने लगे—

अगस्त्य उवाच—

मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनि विश्वमातः।
क्षीरोदधे कमलकोमलगर्भगौरि लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतांशरण्ये ॥
त्वं श्रीरुपेन्द्रसदने मदनैकमातर्ज्योत्स्नासि चंद्रमसि चन्द्रमनोहरास्ये।
सूर्यप्रभासि च जगत्त्रितये प्रभासि लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥
त्वं जातवेदासि सदादहनात्मशक्ति र्वेधास्त्वया जगदिदं विविधं विदध्यात्।
विश्वंभरोपि विभृयादखिल भवत्या लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतांशरण्ये ॥
त्वत्त्यक्तमेतदमले हरते हरोपि त्वं पासि हंसि विदधासि परावरासि।
ईशो वभूव हरिरप्यमले त्वदाप्त्या लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥
शूरः स एव स गुणी स बुधः स धन्यो मान्यः स एव कुलशीलकलाकलापैः।
एकः शुचिः स हिपुमान् सकलेऽपि लोके यत्रापतेत्तव शुभे करुणाकटाक्षः ॥
यस्मिन्वसेः क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे स्त्रैणे तृणे सरसि देवकुले गृहेऽन्ने।
रत्ने पतत्रिणि पशौ शयने धरायां संश्रीकमेव सकलेतदिहास्ति नान्यत् ॥
त्वत्स्पृष्टमेव सकलं शुचितां लभेत त्वत्त्यक्तमेव सकलं त्वशुचीहलक्ष्मि।
त्वन्नाम यत्र च सुमंगलमेव तत्र श्रीविष्णुपादकमले कमलालयेऽपि ॥
लक्ष्मीं श्रियं च कमलां कमलालयां च पद्मां रमां नलिनयुग्मकरां च मांच।
क्षीरोदजाममृतकुंभकरामिरां च विष्णुप्रियामिति सदा जपतां क्व दुःखम् ॥

अगस्त्य ऋषि कहने लगे कि 'हे कमल के समान विशाल नेत्र वाली। श्री विष्णु के हृदयस्वरूपी कमल में निवास करने वाली। जगज्जननी ! मातः कमले ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। हे क्षीरोदजे। कोमल-कमल गर्भ के समान गौर वर्ण वाली ! प्रणतशरण्ये ! लक्ष्मि। आप सदा हम पर प्रसन्न हों ! हे मदन मातः। विष्णु के सदन (भवन) में 'श्री' आप ही हैं, हे चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली देवी आप ही चन्द्रमा में ज्योत्स्ना (चन्द्रिका) हैं, सूर्य मण्डल में प्रभा और त्रैलोक्य में शोभा हैं। हे प्रणतपालिनी ! लक्ष्मि ! आप सदा हम पर प्रसन्न रहें। हे देवी ! आप ही अग्नि में दाहिका शक्ति हैं, ब्रह्मा आपही के साधकता से इस विचित्र सृष्टि की रचना करते हैं और विश्वम्भर भी आपही की सहायता से समस्त संसार का पालन करते हैं, हे सदाशरणार्तिहारे लक्ष्मि ! आप हम पर प्रसन्न हों। हे अमले ! आपके इस संसार के त्याग ने ही पर रुद्रदेव भी इसका संहार करते हैं अतएव आप ही सृष्टि-स्थिति-विनाश करने वाली हैं, आपही कार्य-कारण रूपा हैं, हे लक्ष्मी ! आपही को पाकर नारायण भी पूजनीय हुए हैं; हे शरणागतवत्सले। आप हमपर सदा प्रसन्न रहें। हे शुभे ; जिस व्यक्ति पर आपका करुणा-कटाक्ष पड़ जाता है सारे लोक में वही शूर (वीर), वही गुणवान, वही पण्डित, वही धन्य-मन्य और कुलशील कलाकलाप युक्त पुरुष कहलाता है। हे सर्वस्वरूपे ! आप जहाँ पर क्षणमात्र के लिए भी रह जाती हैं पुरुष, गज (हाथी), अश्व (घोड़ा), स्त्रीसमूह, तृण, सरोवर, देवकुल, गृह, अन्न, रत्न, पक्षी, पशु, शय्या और भूमि, ये सब 'सश्रीक' हो जाते हैं अर्थात् आपके समान हो जाते हैं अन्यथा इस संसार में लोग श्रीमान् नहीं हो सकते। हे लक्ष्मि ! आपके स्पर्श कर देने से सभी वस्तुएँ संसार में पवित्र हो जाती हैं और जिसे आप त्याग देती हैं वे ही द्रव्य अशुद्ध हो जाते हैं। हे विष्णु पत्नि ! कमलालये ! कमले ! जिस स्थान में आपका नाम है वहीं पर सुमंगल भी विराज मान है। लक्ष्मी, श्री, कमला, कमलालया, पद्मा, रमा, नलिनयुग्मकरा, माँ,

क्षीरोदजा, अमृत कुम्भकरा, इरा (इन्दिरा) और विष्णु प्रिया, आपके इन बारह नामों को जपने वालों को कभी दुःख नहीं होता।"

इस प्रकार पत्नी सहित अगस्त्य ऋषि ने हरिप्रिया भगवती महालक्ष्मी की स्तुति करके साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम किया। तब महालक्ष्मी ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा कि हे मित्रावरुणनन्दन ! अगस्त्य ! उठो-उठो ! तुम्हारा कल्याण हो, हे शुभव्रते ! पतिव्रते ! लोपामुद्रे ! तुम भी उठो ! तुम्हारी इस स्तुति से मैं अत्यधिक प्रसन्न हूँ। तुम्हारे हृदय में जो इच्छा हो सो कहो। हे महाभागे ! पवित्रे ! राजपुत्रि ! तुम इस स्थान पर बैठो ! पतिव्रत्यादि सूचक तुम्हारे इन अङ्ग लक्षणों से और तुम्हारे परम पवित्र व्रतों से अपने असुरास्त्र से, दुखित शरीर के दुःखों को मैं दूर करना चाहती हूँ। ऐसा कहते हुए महालक्ष्मी ने लोपामुद्रा को अपने हृदय से लगा लिया और तत्पश्चात् उन्हें बड़े प्रेम के साथ सौभाग्य देने वाले सभी आभूषणों से अलंकृत किया (पहनाया)।

इसके पश्चात् महालक्ष्मी ने ऋषि को सम्बोधित करते हुए कहा कि हे मुने ! तुम्हारे हृदय के दुःख को मैं जानती हूँ। काशी का विरहानल सचेतन (प्राणी) को ही कष्ट देता है अर्थात् व्याकुल किये रहता है। एक समय पूर्वकाल में देवाधिदेव महादेव विश्वेश्वर जब मन्दराचल को गये थे, तो उस समय काशी के वियोग से उनकी भी ठीक तुम्हारी ही भाँति दशा हो गई थी। शूलपाणि ने काशी का समाचार जानने की इच्छा से पुनः क्रमशः ब्रह्मा, केशव, प्रमथगण, गणेश और अन्य देवताओं को वहाँ भेजा था। वे सब देवगण बारम्बार काशी के गुणों को विचार कर आज तक वहाँ से कहीं नहीं गये। वस्तुतः काशी जैसी नगरी उन्हें अन्यत्र कहीं नहीं दीखती थी। इस बात को सुनकर अगस्त्य ऋषि ने प्रणाम कर बड़े भक्ति के साथ महालक्ष्मी से निवेदन किया कि हे देवी ! यदि आप मुझे वर देना ही चाहती हैं और मुझे उसके योग्य समझती हों तो यही वर देने की कृपा करें कि मुझे वाराणसी पुनः मिले और जो

कोई मेरे द्वारा ऊपर की गई आपकी स्तुति का भक्तिपूर्वक पाठ करेंगे उन्हें कभी सन्ताप, दरिद्रता, प्रिय वियोग, उनकी सम्पत्ति का नाश न होगा, सर्वत्र उनकी विजय होती रहेगी और कभी उनका वंश विच्छेद (नाश) भी न होगा।

इतना सुन महालक्ष्मी जी ने कहा कि हे मुनि ! जो कुछ तुमने माँगा वह सब होगा। तुम्हारे द्वारा रचित पूर्वोक्त स्तोत्र के पाठ से मैं सन्निहित होऊँगी। जिस घर में इस स्तोत्र का पाठ होगा उस घर में दरिद्रता तथा कालकर्णी कभी घुस न सकेगी। हाथी-घोड़ा और पशु आदि के शान्त्यर्थ इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिये।

भगवती लक्ष्मी ने कहा कि इस स्तोत्र को भोजपत्र पर लिखकर कण्ठदेश (गले) में पहिना देने से बालग्रहों से ग्रस्त बालकों को परम शान्ति मिलती है। यह मेरा बीज रहस्य प्रयत्न-पूर्वक रक्षणीय है, श्रद्धाहीन जन को यह स्तोत्र कभी न देवे और न कभी अशुचि (अशुद्ध) लोगों को हीं देवे। महालक्ष्मी ने आगे कहा कि हे विप्रेन्द्र ! आगे और सुनो ! आने वाले २९ वें द्वापर युग में तुम निश्चित रूप से 'व्यास' होगे। तब वेदों का विभाग करके और पुराण, धर्मशास्त्र का उपदेश करके तथा वाराणसी को पुनः इस प्रकार प्राप्त करके अपनी इच्छा की पूर्ति करोगे।

इस प्रसंग में तुम्हारे हित की बात मैं कहती हूँ उसे सुनो और करो। वह यह कि 'यहाँ से कुछ दूर आगे जाने पर तुम्हें कार्त्तिकेय भगवान का दर्शन होगा। हे ब्रह्मन् ! वे षणमुख प्रभु यथावत् शिवजी के द्वारा कहे गये वाराणसी के रहस्य को तुम्हें बतावेंगे जिससे तुम्हारा सन्तोष होगा।'

अगस्त्य ऋषि इस प्रकार वरदान पाकर महालक्ष्मी को प्रणाम करके उस स्थान पर गये जहाँ मयूरवाहन कुमार कार्त्तिकेय जी निवास करते थे।

इस प्रकार स्कन्दपुराण के पूर्वार्द्ध में 'अगस्त्य प्रस्थान' वर्णन नामक (पञ्चम) अध्याय की कथा का वर्णन भाषा में किया गया।

(आगे की कथा का वर्णन अगली पुस्तक में)

काश्यां मरणान्मुक्तिः

आध्यात्मिक दृष्टि से 'काशी' संसार में अनुपमेय है। काशी भगवान विश्वनाथ की राजधानी है। यहाँ भगवान विश्वनाथ विश्राम करते हैं इसीलिये इसे 'आनन्दवन' कहा गया है। समस्त जीवों को चाहे वह कितना ही बड़ा पापी क्यों न हो यदि काशी में आकर उसने यहाँ रहने का संकल्प कर लिया तो फिर उसको भगवान द्वारा 'मृत्युदण्ड' मिला ही समझना चाहिए।

काशी में जीव-यह संकल्प करके निवास करता है कि वह 'काशी' कभी नहीं छोड़ेगा और यहाँ रहकर जब वह अपने किए हुए पापों के निमित्त प्रायश्चित रूप में मृत्युदण्ड प्राप्त करता है 'गंगास्नान' 'देव दर्शन', दान आदि करते-करते तब फिर उसे मुक्ति मिलेगी कि नहीं किसी को यह सन्देह नहीं होना चाहिए। उसे मुक्ति अवश्य मिलेगी।

उदाहरण के लिए हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि किसी एक व्यक्ति पर शासनाधिकारियों ने चोरी, व्यभिचार, डाका, हत्या आदि के कई आरोप लगाये हों और उसे राजा अर्थात् शासन उसके प्रत्येक कृत्यों पर अलग-अलग सजा देता है, किसी में ४ वर्ष, किसी में ५ वर्ष, किसी में १० वर्ष और हत्या में मृत्यु दण्ड की सजा देता है तो ऐसी स्थिति में सर्वप्रथम सबसे बड़ी सजा 'मृत्युदण्ड' मिलती है तब वह व्यक्ति अन्य सजा भोगने से मुक्त ही हो जाता है। तात्पर्य यह कि जब वह मर ही गया तो फिर अन्य सजा कौन भोगेगा अतः उसे सब सजा से मुक्त ही समझा जाता है।

ठीक मृत्यु दण्ड इसी प्रकार प्राप्ति हेतु जिसने काशी का संकल्प कर प्रायश्चित्त के लिये भगवान से प्रार्थना किया और उसने 'काशी देवी' के समक्ष दण्ड पाने के निमित्त अपने को समर्पण कर दिया तथा इस प्रकार मृत्युदण्ड मिलने तक वह यहाँ रह गया तो भला उसे आवागमन से मुक्ति क्यों नहीं मिलेगी।

आवागमन में ही सांसारिक सुख-दुःख की अनुभूति होती है। अन्यत्र मरने पर यमराज के समक्ष उपस्थित होकर उनके द्वारा दिये दण्ड को भुगतना पड़ता है पुनः जन्म लेने पर फिर वही कर्म वह करता है और इस प्रकार जीव बार-बार जन्म

लेता है, पाप करता है, दण्ड भोगता है पुनः गर्भ रूपी कैद में बन्द होकर छूटता है और वही कर्म सदा करता है तात्पर्य यह कि उसको मुक्ति नहीं होती। मुक्ति तो राजा के समक्ष जाने पर और अपने अपराध को स्वीकार कर महान प्रायश्चित करने से उसके द्वारा दिये गये 'मृत्युदण्ड' मिलने पर ही होती है।

'काशी' भगवान विश्वनाथ की विश्राम नगरी है। यहाँ ज्ञान रूपी प्रकाश सदा सर्वदा देदीप्यमान रहता है। ज्ञान की प्राप्ति विरक्ति से और विरक्ति की प्राप्ति 'वीभत्सरस' से ओत प्रोत वातावरण में रहने से ही होती है। जिसे श्मशान पर जाने का अवसर मिला है उसे वहाँ का वीभत्सरूप देखकर एकदम विरक्ति अवश्य उत्पन्न हुई होगी और तब वह वहाँ यही कह बैठता है कि "इस 'संसार' में कुछ नहीं है अन्त में सबकी यही गति होनी है"। वहाँ से हटने के बाद 'विरक्ति' गायब हो जाती है। उसका ज्ञान कपूर की भांति उड़ जाता है और फिर वही सांसारिक चक्र में वह फँस जाता है।

काशी महाश्मशान है। यहाँ भगवान शंकर मुक्तहस्त से मुक्ति बाँटते फिरते हैं। आवश्यकता है यहाँ पर दृढ़ निश्चय कर रहते-रहने मरने वालों की।

————

चरणाद्रि (चुनार)

पूर्व कथानुसार काशी से निकल कर अगस्त्यऋषि विन्ध्य के समक्ष गये। वह विन्ध्य पर्वत ने गुरु के चरणों में मस्तक नवाया और उसे वैसे ही माथा टेके पड़ें रहने को कह कर ऋषि 'दण्डकारण्य' को गये यह ज्ञान हमें प्राप्त हो गया था।

इस ज्ञान के पश्चात् आज का पाठक एक बार यह सोचेगा कि वह स्थान कौन सा है जहाँ 'ऋषिचरणों' पर विन्ध्य ने मस्तक टेका और ऋषि अपनी पत्नी के साथ किस मार्ग से दण्डकारण्य गये। यदि पुराण की यह कथा सत्य है तो वह स्थान और मार्ग कौन सा है ?

यह प्रश्न मेरे मन में भी आया था। संयोगवश विगत पौष कृष्ण ६ संवत २०२४ को श्री गुसांई विट्ठलनाथ जी के जन्मोत्सव के दिन मैं 'चुनार' गया।

परम्परागत जब हमारे परिवार का कोई व्यक्ति चुनार जाता है तो वह दक्षिण पहाड़ो पर स्थित 'दुर्गा खो' में माँ 'दुर्गा' का दर्शन अवश्य करने जाता है। उस स्थान पर एक गुफा है जिसमें हमारे पाँच पीढ़ी ऊपर के पूर्वज पं० फेकू उपाध्याय वहाँ 'तप' करते हुए देवी की उपासना करते रहे। मैं भी वहाँ गया। इस स्थान का वर्णन भी काशी खण्ड में आया है तथा इनसे आगे एक काली जी का मन्दिर भी है वहाँ मैं दुर्गा पूजन करने के पश्चात दर्शन-पूजन हेतु गया। भगवती कृपा समझिये मैंने चुनार के किला के सम्बन्ध में वहाँ के सेवक से पूछा।

उन्होंने बताया कि किला का स्थान विन्ध्य पर्वत की चोटियों में ऊँची चोटी है। इस पर काशी से आने पर अगस्त्य ऋषि को खड़ा देख कर विन्ध्य पर्वत ने गुरु के चरणों में मस्तक नवाया था इसी से इसका नाम 'चरणाद्रि' पड़ा।

इतना सुनते ही मुझे और कूतूहल व्याप्त हुआ मेरी जिज्ञासाओं को तृप्त करते हुए महात्मा ने बताया कि इसी किले में महाराज 'भरथरी' की समाधि है। महाराज विक्रमादित जो उनके भाई थे ने इस चोटी पर चारो ओर परकोटा व विशाल द्वार बनवाया तब से इसका नाम 'चरणाद्रिगढ़' पड़ा।

इसी गढ़ी में आल्हा का ब्याह हुआ है राजकुमारी 'सोनवा' से। सोनवा की एक सखी 'नयना' नामक योगिनी थी जो दुर्गा खो जाते समय मार्ग के बायीं

पहाड़ी की गुफा में रहती थी जो गुफा आज भी यथावत स्थित है इसके द्वार का मुख गढ़ी में सोनवा के खिड़की के ठीक सामने रहा इस प्रकार उस 'नयना योगिनी' की दृष्टि सदा उस गढ़ी पर लगी रहती थी अतः उस समय यह गढ़ी 'नयनागढ़' के नाम से यह प्रसिद्ध था।

मुसलिम शासन काल में यहाँ की विन्ध्य पहाड़ो से बहुत से पत्थर अन्यत्र ले जाये गये क्योंकि यहाँ का पत्थर सुन्दर और सुडौल माना जाता था। इस प्रकार उस काल में इसका नाम 'पत्थरगढ़' पड़ा।

पत्थरगढ़ से पत्थर का व्यापार बढ़ने पर यहाँ उसके कारीगर चिनाई करने वाले अधिक संख्या में रहने लगे इसी लिये अंग्रेज शासन काल में इस स्थान का नाम 'चुनार' पड़ गया।

इस प्रकार पुराण के 'चरणाद्रि से 'चुनार' नाम करण का विवरण सुनकर उत्कण्ठा और जागो। मैंने पुनः प्रश्न किया कि दण्डवत के पश्चात् ऋषि किस मार्ग से दक्षिण गये थे तो महात्मा ने बताया कि यह वही मार्ग है जिस मार्ग से लोग इस मन्दिर में आते हैं। आपने बताया कि इसो मार्ग से श्री हनुमान जी उस समय रामेश्वर तट से भगवान विश्वनाथ को बुलाने भी काशी गये थे।

हनुमान जी ने इसी मंदिर के स्थान पर उस समय शंकर की मूर्ति को 'रामदक्षिणेश्वर' नाम से स्थापित किया था।

इस मन्वन्तर से पूर्व मन्वन्तर में इसी स्थान पर 'मेधस' नाम के ऋषि तप करते थे जहाँ पर दुर्गा सप्तशती के अध्याय दो का 'सुरथ' नामक राजा ने तीन वर्ष तक तप किया था और देवी को प्रत्यक्ष किया था। आज भी यहाँ स्थित वट वृक्ष के नीचे 'पुलिनगंगा' का उद्गम स्थल है।

महात्मा ने बताया कि त्रेता में इसी मन्दिर के स्थान पर 'शृङ्गीऋषि' रहते थे यहीं से वह अयोध्या में राजादशरथ के पुत्रेष्ठि यज्ञ में ले जाये गये थे।

'वावन' अवतार के समय इसी विन्ध्य के मस्तक पर भगवान विष्णु ने पग नापते समय यहीं चरणाद्रि गढ़ी के समीप एक चरण रखा था तब भी इसे 'चरणाद्रि' ही कहा जाता था।

यह विन्ध्य पर्वत का मस्तक का स्थान इतना पवित्र है कि यहाँ की भूमि पर 'गुरू चरण', भगवान का चरण पड़ा था तथा दुर्गासुर संग्राम और नयनागढ़ को लड़ाई भी यहीं हुई है।

इसकी पवित्रता के कारण ही भगवान के चरण के समीप श्रीमद् वल्लभाचार्य जी 'महाप्रभुजी' ने अपमा गृह वनाया और श्री गुसाई विट्ठलनाथ जी का जन्म भो यहीं हुआ था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस 'चरणाद्रि' का सम्वन्ध काशी से बड़ा गहरा रहा है। रेलवे अथवा बस स्टेशन से दक्षिण ओर दो पहाड़ियों के बीच से से यह अगस्त्य ऋषिके 'दक्षिणगमन' का द्वार आज भी प्रत्यक्ष है। यह स्थान उत्तर और दक्षिण भारत को, पूर्व से पश्चिम ओर विस्तृत होकर विभक्त करनेवाले विन्ध्य पर्वत का काशी से निकट पहला स्थान है। इस कारण से यह मानना पड़ता है कि 'चरणाद्रि' ही वह स्थान है जहाँ पर अगस्त्यऋषि के चरणों में विन्ध्य ने मस्तक टेका था और ऋषि इसी 'दुर्गा खो' वाले मार्ग से दक्षिण दिशा को गमन किये थे।

पुरातत्व के विद्वानों को खुदाई में इस स्थान के निकट मध्यपाषाणयुग की बहुत सामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं जिससे भी सिद्ध होता है कि उत्तर से दक्षिण जाने का यह मार्ग काशी के सन्निकट सदा से रहा है। आज भी इस मार्ग से इधर के निवासी लोग बराबर आते-जाते रहते हैं।
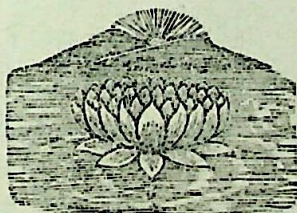
चरणाद्रि स्थित महाप्रभु जी की बैठक

श्री गुसाँई 'विट्ठलनाथ' की जन्म स्थली

श्री मद्वल्लभाचार्य जी अपनी तीसरी परिक्रमा कर १५७२ में चरणाद्रि (चुनार) मे पधारे और वहीं रहने लगे। इसी स्थान पर महाप्रभुजी के द्वितीय पुत्र श्री गुसांई विट्ठलनाथ जी का जन्म पौषकृष्ण ६ संवत १५७२ को हुआ था। इस स्थान के सम्बन्ध में कहा गया है कि—

"गुप्त' वृन्दावनं यत्र नाना पक्षि समाकुलम ।
गिरिराज कनिष्ठस्य चरणाद्रेश्च नगह्वरे
भविष्यति कलेर्मध्ये प्रथमो नन्दनन्दनः ।।"

श्री गुसांई विलठ्ठलनाथ जी का शिशुकाल यहीं बीता है। बाद में आप प्रयाग के अड़ैल ग्राम में चले गये थे।

श्री चरणाद्रि की 'बैठक' में एक प्राचीन कूप है जिसका उपयोग श्री महाप्रभुजी करते थे। इसे आचार्य कूप से आज भी जाना जाता है। लोगों कीमनोकामना इस 'कूप' के अमृतमय जल-सेवन से पूर्ण होती है। विशेषकर राजयक्षम (तपेदिक) के समान असाध्य रोगी इस जल के सेवन से स्वस्थ हो चुके है। यह एक अद्भुत कूप है। यह स्थान काशी के चौखम्भा स्थित श्रीगोपाल मन्दिर के वर्तमान पीठाधीश गोस्वामी श्री १०८ श्री मुरलीवर जी महाराज के स्वामित्व परम्परा से है।

संवत १८५३ में गोस्वामी श्री मुरलीधर जी के पूर्वज गोस्वामी श्री १०८ श्री गिरधर जी महाराज अपने सेव्य स्वरूप श्री गोपाललाल जी की मूर्ति गोपाल मन्दिर (काशी) से सुखपाल पर पधरा कर चरणाद्रि के इस पवित्र स्थान

पर बड़े समारोह के साथ लाये थे। आपके साथ हजारों सेवकगण भी आये थे। १०-१२ दिन तक विविध प्रकार के उत्सव का कार्य क्रम चलता रहा। इसके बाद यहाँ के व्यवस्थापक श्री पं० गणेश राम जी के कार्य काल में वर्तमान कलापूर्ण मन्दिर एवं भवन बना। इसके परकोटे (चहारदीवारी) में सुन्दर बाग, तालाब एवं अनेक स्थानों पर भावपूर्ण प्रस्तर पाषाण मूर्तियों का निर्माण हुआ। स्थान बड़ा ही रम्य लगता है। वास्तव में वहाँ जाकर लोगों को अपार शक्ति मिलती है। यह स्थान और उसके सजावट की मनमोहकता का ही फल है।

वर्तमान समय यहाँ के मुखिया पं० श्री सुग्गीजी तथा पं० श्री पद्मनाभजी बड़ी श्रद्धा से स्थान की सेवा कर रहे है। स्थान के बगल में ही भक्तों के रहने हेतु अनेक श्रद्धालु वैष्णवों ने भवन बनवाये हैं। यहाँ लगभग १००० व्यक्तियों के रहने का स्थान है। स्थान प्राचीन होने के कारण धीरे-धीरे नष्ट हो रहा है। उसकी पर्याप्त व्यवस्था होना आवश्यक है।

इस स्थान में दो वर्ष पूर्व काशी के लब्ध प्रतिष्ठित अधिवक्ता (एडवोकेट) श्री चतुर्भुजदास पारिख के सहोयग से आधुनिक प्रकाश (बिजली) लगी है।

श्री विठ्ठल नाथ जी

श्री गुसांई श्री विठ्ठलनाथ जी श्री मद्वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र थे। आपका लालन पालन आपकी माता श्रीमती महालक्ष्मी जी (अक्का बहूजी) की गोद में हुआ था।

श्री गुसांई विठ्ठलनाथ जी के समय भारतवर्ष म्लेछों से आक्रांत था। तीर्थ स्थानों में दुष्टों का बोल-बाला था। लोगों में पापाचार फैला था। सज्जन लोग सताये जाते थे। कलिकाल विलास कर रहा था। इसका दिग्दर्शन "कृष्णाश्रय" स्तोत्र में श्री महाप्रभूजी ने इस प्रकार से निर्देष किया है।

"सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणि।
पाखंडप्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम ॥"

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च ।
सत्पीडाव्याग्र लोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥
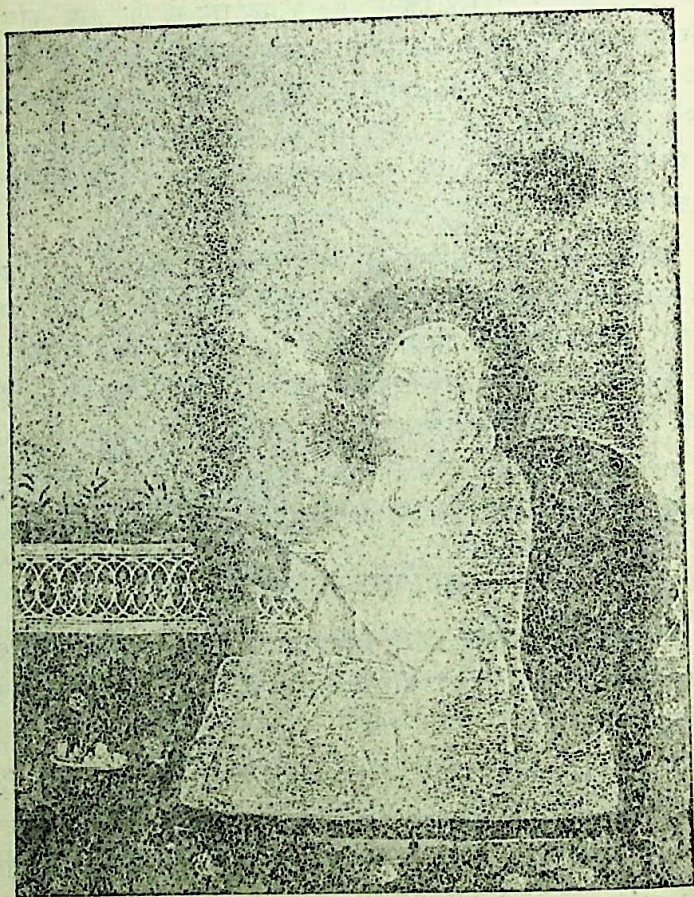
श्री गुसांई विट्ठलनाथ जी ने अपने चमत्कार द्वारा सारी परिस्थितियों में परिवर्त्तन कर डाला था ।

श्री गुसांईजी ने 'भगवान' के मंगला (प्रातःकाल प्रथम दर्शन व आरती) से शयन (रात्रि की अन्तिम दर्शन आरती) तक के कीर्त्तन विवरण, सेवाक्रम स्थिर किये, ऋतुओं के अनुसार भगवान के भोगराग, वागावस्त्र, अलंकार आदि की पद्धति भी निर्धारित की जो अत्यन्त भाव पूर्ण हैं।

आपने संवत् १६४० में अपने पुत्रों के भाग को स्वयं दे दिया जिससे आगे चलकर उनके बाद वे कोई विवाद न करें। आपके श्री गिरधरजी, श्रीगोविन्दजी, श्री बालकृष्ण जी, श्री गोकुलनाथ जी, श्री रघुनाथ जी तथा श्री यदुनाथ जी प्रथम पत्नी श्रीरुक्मिणीजी से और द्वितीय पत्नी श्री पद्मावती जी से श्री घनश्याम जी पुत्र थे।

भारत वर्ष में श्री गुसांई विट्ठलनाथ जी की २८ बैठकें प्रसिद्ध हैं। इन स्थानों पर वास कर आपने भक्तों को उपदेश दिया था। आपने शुद्धाद्वैत का प्रचार और प्रसार किया था।

आप ने माघ कृष्ण ६ संवत् १६४२ को श्रीगिरिराजजी की कन्दरा में प्रवेश किया था। इस प्रकार आपने इस भूतल पर ७० वर्ष व्यतीत किये थे।

प्रतिवर्ष पौष कृष्ण ९ को बड़े समारोह के साथ आपके जन्म स्थली (चरणाद्रि) में आप श्री का जन्मोत्सव मनाया जाता है। जिसमें देश के कोने-कोने से वैष्णव लोग भाग लेने आते हैं।

——

काशी में विन्ध्यवासिनी देवी

काशीपुरा, संकठा मन्दिर के समीप तथा राजमन्दिर हनुमान जी के सामने ये तीन मन्दिर भगवान कृष्ण के महामाया 'विन्ध्यवासिनी' के मन्दिर है प्रारम्भ का चित्र काशीपुरा के देवी का है।

जंगम-वाड़ी

संसार के प्राचीन एवं पुण्य क्षेत्रों में प्रमुख 'काशी' जिसके अधिपति स्वयं बाबा विश्वनाथ हैं, में अगस्त्य ऋषि के आश्रम (अगस्तकुण्ड महल्ला) के समीप एक स्थान 'जंगमवाड़ी' अर्थात् 'जंगमवाटिका' है। इसी 'वाटिका' में वेदागम प्रतिपादित 'वीरशैवमत' के संस्थापक पञ्चाचार्यों में से एक भगवान 'श्री विश्वाराध्य जी' का 'ज्ञान सिंहासन' महामठ पूर्वकाल से चला आ रहा है।

वीरशैव सिद्धान्त के आचार्यों का वर्णन वेद-आगम-उपनिषद-पुराण आदि में मिलता है। इस वीरशैवमत के मूल, रेणुकादि पञ्चाचार्य तथा वीरभद्र आदि गोत्रपुरुष 'शिव जी' के गण कहे गये हैं।

पुराणों के रचयिता श्री वेदव्यास जी ने 'स्कन्द' पुराण के शङ्कर संहिता में 'वीरशैवमत' का वर्णन विस्तार से किया है। इसी पुराण के माहेश्वरखण्ड में 'केदार' खण्डान्तर्गत सातवें अध्याय में भी वीरशैवमत के सम्बन्ध में उल्लेख है।

केदार खण्ड में कहा गया है कि :—

सन्ति रुद्रेण कथिताः शिवधर्माः सनातनाः।
वीरभद्रो यथा रुद्रस्तथान्ये गुरवःस्मृता ॥

वीरभद्र-शैलाद (नन्दी) और स्कन्द वीरशैवों के गोत्र पुरुषों में से हैं। वीर, नन्दी, भृङ्गी, वृषभ, स्कन्द ये ही पाँच 'पञ्चाचार्य' प्रत्येक युग में भगवान विश्वनाथ (शिव) के आज्ञानुसार इस भू-लोक में अवतार लेकर 'शिव सिद्धान्त' और 'शिवभक्ति' का प्रचार करते आये हैं।

वीर शैवमत के प्रतिपादक स्वयं भगवान 'शंकर' थे।

वीरशैव की रक्षा के लिए 'भरत-खण्ड' में प्रमुख पांच 'शिवपीठों' में ये पांचो 'पंचाचार्य' वास करते आये हैं। इनमें से

१—श्री रेणुकाचार्य जी का 'वीर पीठ'-मलय पर्वत के सीमप 'भद्र' नदी के तीर (मैसूर राज्य) पर स्थित 'रम्भापुरी' में है।

२—श्री दारुकाचार्य जी का 'सद्धर्म पीठ'—उज्जैन (बल्लाटी में मैसूर) में विराजमान है।
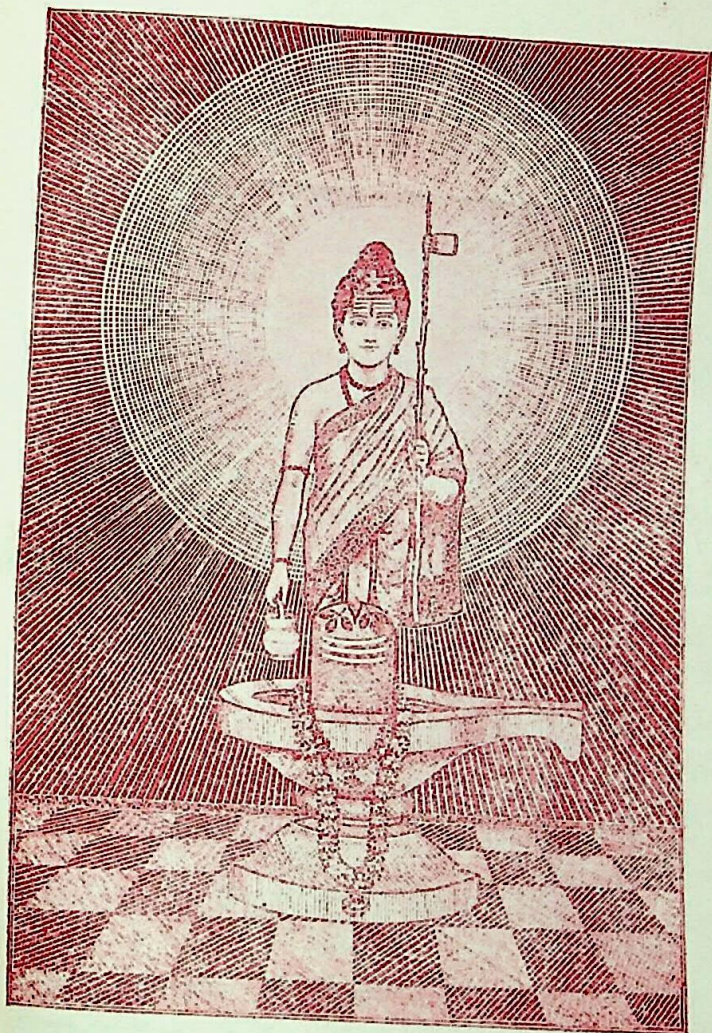
'वीरशैव' मत के आद्याचार्य

श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जी

'महाशिवरात्रि' को प्रादुर्भाव होने के कारण आपको भक्तगण 'विश्वनाथ' तुल्य मानते हैं।
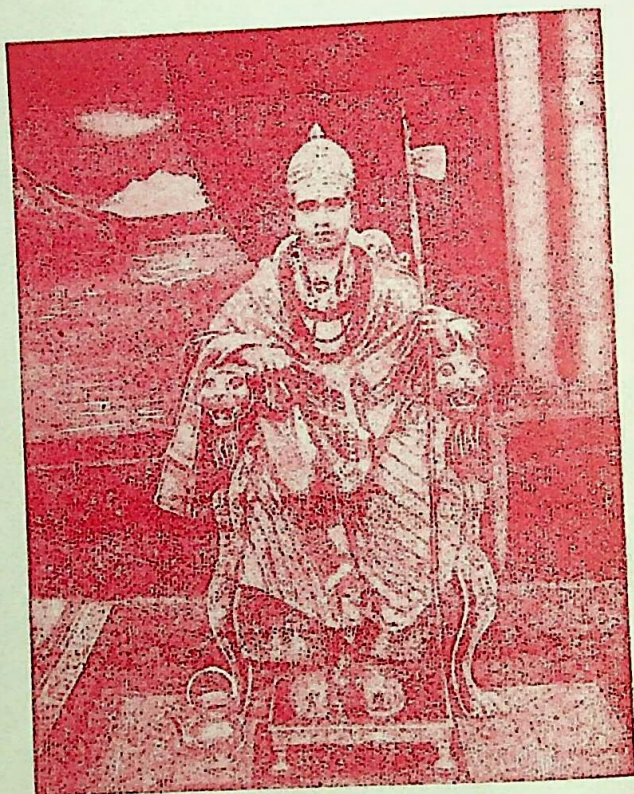
श्रीकाशीज्ञानसिंहासनाधीश्वर श्रीजगद्गुरु

विश्वेश्वरशिवाचार्य महास्वामीजी

३—श्री पण्डिताराध्य जी का 'सूर्य पीठ'—'श्री शैलक्षेत्र' में हैं।

४—श्री एकोरामाध्यजी का 'वैराग्य पीठ'—हिमालय स्थित 'केदार' के 'उखामठ' में सुशोभित हैं। इस क्षेत्र के लोग इस पीठस्थान को 'केदारनाथ रावल' (महन्त) की गद्दी कहते हैं।

५—श्री विश्वाराध्यजी का 'ज्ञानपीठ'—काशी क्षेत्र में जंगम-वाटिका में देदीप्यमान हैं। महाभारत काल में इस मत को 'महापाशुपत' नाम से जाना जाता रहा। आज भी 'वीरशैव' मत के करोड़ों व्यक्ति बम्बई, मद्रास, मैसूर, आन्ध्र, मध्यभारत में पाये जाते हैं। ये लोग गले में 'शिवलिंग' धारण करते हैं और पीठों के 'आचार्य' विद्वान एवं बाल ब्रह्मचारी होते हैं।

'वीरशैव मतावलम्बी' सम्प्रदाय शिवोक्त धर्म से आबद्ध है।

वीरशैव लोग 'शिवभक्ति में और अपने आचार-विचार में दृढ़ होते हैं। इनकी वीरता एवं दृढ़ता 'नवधा भक्ति' के निर्वाह में दिखाई देती है। दूसरों के प्रति बुराई करने में या द्वेष रखने में नहीं।

'काशी' के 'ज्ञान' पीठ के श्रीविश्वाराध्यजी के सम्बन्ध में कहा गया है कि :-

"काश्यां विश्वेश्वरे लिंगे विश्वाराध्यस्य सम्भवः।
स्थानं श्री काशिका क्षेत्रे अणुपार्वति। सादरम्॥
(स्वयम्भुवागम)

इस प्रकार श्री विश्वाराध्य जी का यह पवित्र स्थान ज्ञान-सिंहासन पीठ (जंगमवाड़ी) नाम से प्रसिद्ध है।

जंगमवाड़ी मठ की विशेषता

जंगमवाड़ी मठ को यहाँ के मठों में प्राचीन कहा जाता है। इस मठ में शैवकालीन इतिहास की झांकी, ऐतिहासिक शोध की सामग्री, काशिराज श्री जयनन्द देव का १४ सौ वर्ष पुराना दान पत्र, मुगल सम्राट हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ, औरंजेब के दानपत्र आदि सुलभ हैं।

इसी वाटिका के क्षेत्र के समीप 'हरिकेश वन' रहा जहाँ सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र 'रोहित' को सर्प ने डंसा था। उस समय गोदावरी तीर्थ

(गोदौलिया) से भदैनी-लंका जाने वाले मार्ग में एक बड़ा नाला था। इसके दोनों ओर घोर 'वन' था। (शिवग्रंथमाला त्रयोदशपुष्पम पृष्ठ ६, जंगमवाड़ी मठ)

नरेशों के दान पत्र

काशी पर ५ वीं सदी में कन्नोज का आधिपत्य हो गया था उसके अधीन काशीराज थे। ६वीं सदी के लगभग काशी नरेश महाराज श्रीजयनन्द थे, जिनका दानपत्र यहाँ सुरक्षित है। काशी नरेश महाराज श्री प्रभूनारायणसिंह जी का भी दान पत्र सुरक्षित है इनके अतिरिक्त अन्य नरेशों के भी दानपत्र हैं।

हिन्दु नरेशों के अतिरिक्त मुस्लिम सम्राटों—हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंजेगब तथा मुहम्मद शाह के भी दानपत्र हैं जो इस जंगमठ को दिये गये है यहाँ देखे जा सकते हैं। बनारस गजेटियर के पृष्ठ १२३ पर इन फरमानों का उल्लेख मिलता है।

सम्राट हुमायूँ ने मिरजापुर जिले के 'चुनार तहसील में यहाँ के साधुओं को ३०० बीघा जमीन दान में दिया था। बाद के सभी सम्राटों ने इस पर अपनी मुहर लगायी है। अकबर ने ४८० बीघा भूमि दान दिया था।

औरंगजेब भयभीत

बताया जाता है कि जब औरंगजेब काशी में मन्दिरों को तुड़वा रहा था तब वह इस जंगम मठ को भी लूटने हेतु यहाँ आया था पर उसने यहाँ एक भयावनी लाल नेत्र वाली भीमकाय मूर्ति देखा और शरणागत होकर इस स्थान के लिये अपने हस्ताक्षर से दिये दान पत्र में उसने भूमिदान किया।

इस मठ में जहाँ बैठ कर प्रथम आचार्य ने उपदेश दिया था वह स्थान शोभनीय एवं पूजनीय स्थित है। जब महन्त की गद्दी रिक्त होती है और उसकी पूर्ति के लिये जिस दिन नये महन्त अभिषिक्त होकर गद्दी पर बैठते हैं केवल उस दिन नये महन्त इस स्थान पर बैठते हैं बाद में यह मात्र पूजन का ही स्थल रहता है।

मठ में हस्तलिखित एक विशाल पुस्तकालय है जिसमें अनेक ग्रन्थों के अतिरिक्त ताड़ पत्र पर अंकित ग्रन्थ भी हैं इस ताम्र एवं ताड़ पत्रों के लिखने

के सभी साधन यहाँ सुरक्षित हैं। यहाँ विद्यार्थियों के रहने की विशेष व्यवस्था है जिसमें अधिकांश दक्षिणी अपने समाज के ही होते हैं।

मठ का भवन बहुत बड़ा एवं घेर-घुमाव वाला है। 'काशी पीठ' के अब तक ८४ आचार्यों का विवरण यहां मिलता है। इसके उत्तर से दक्षिण में गोदौलिया से बंगाली टोला डाक घर तक और पूरब से पश्चिम में अगस्त्यकुण्ड से रामापुरा तक सारा 'जंगमवाड़ी' महाल नाम से आज भी जाना जाता है। इस मठ के स्थान मानसरोवर, धनकामेश्वर, मनःकामेश्वर और साक्षी विनायक के स्थान भी हैं।

इस मठ में प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में 'शैव' लोग आते हैं। प्रतिवर्ष महाशिवरात्रि के दिन विशेषरूप से मन्दिर सर्वसाधारण के लिए खुलता है।

इस वाटिका में स्थित 'ज्ञान' पीठके वर्तमानमहन्त करनाटकभाषी श्रीमहाराज विश्वेश्वरशिवाचार्य महास्वामीजी हैं। आप बड़े ही विद्वान एवं मृदुभाषी हैं। प्रायः विद्वानों की गोष्ठी अपने यहां कर उनका सम्मान भी किया करते हैं।

[आपने हमारे प्रकाशन 'श्रीकाशीखण्ड' को आशीर्वाद देकर विशेष संरक्षण दिया है]

अगस्त्याश्रम (अगस्तकुण्डा क्षेत्र)

'अगस्त्य ऋषि' का यह आश्रम गोदावरी तीर्थ के दक्षिण-पूर्व में स्तिथ है। इसी गोदवरी तीर्थ के उत्तर ओर 'गौतमऋषि' का पवित्र आश्रम भी है।

आज के लोग उक्त तीनों नामों से प्रायः अपरिचित मिलेंगे। इनका पता काशी के वयोवृद्धों अथवा पुराणों और पुस्तकों के पृष्ठों से जाना जा सकता है।

सर्वप्रथम हम 'गोदावरी तीर्थ को समझें। 'गोदावरी' का आपभ्रंश होकर अब उसे गोदौलिया नाम से जाना जाता है। तीर्थ का क्षेत्र ही गौदौलिया की चौमुहानी नाम से प्रसिद्ध है। मुख्य 'गोदावरीकुण्ड' को पाटकर उसपर श्रीराम लक्ष्मीनारायण मारवाड़ी चिकित्सालय भवन बना है। गोदौलिया नाम से कोई महल्ला नहीं है।

काशी में जहाँ सब देवी-देवता अपने से प्रकट हुए हैं उसी प्रकार यहाँ सभी तीर्थों ने भी वास किया है। इन लोगों का जो-जो स्थान है वह हमारे लिए बड़े ही पवित्र एवं श्रद्धा के पात्र हैं। इनमें से यह एक स्यान पवित्र 'गोदावरी नद' का भी माना जाता है।

अगस्त ऋषि का आश्रम जितना बड़ा था उतने भाग को आज भी हम सभी 'अगस्त्य कुण्डा' महाल के नाम से जानते हैं।

जैसा किशी खण्ड के अध्याय ३, ४ व ५ में अगस्त्य ऋषि के आश्रम का वर्णन मिलता है उसके अनुसार यही स्थान सिद्ध होता है अगस्त्य ऋषि द्वारा स्थापित 'शिव लिंग' तो आज भी किसी प्रकार बचा रह गया है परन्तु इस स्थान की प्रायः सभी प्राचीनता नष्ट हो गयी है। आश्रम के कुण्ड को पाट कर उसपर ऊँचे-ऊँचे भवन बन गये हैं। शिव मन्दिर को भी नारायण भट्ट नामक एक दक्षिणी ब्राह्मण ने अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर बनवाया। ईश्वर की कृपा रही कि मन्दिर प्रथम खण्ड तक ही बन पाया। उस ब्राह्मण के पुत्र व पुत्रवधु उस मन्दिर के ऊपरी भाग में विशाल पीपल के वृक्ष के नीचे कुटिया बना कर रहते हैं।

मन्दिर का निचे का भाग सम्पूर्ण पत्थर का सुन्दर एवं कलात्मक बना है। मन्दिर के भीतर चारों ओर फेरी का मार्ग है। उत्तर ओर एक कोठरी और रुद्री एवं कथा-वार्ता के लिए बड़ी सी दालान है पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में पूरा का पूरा चबूतरा बना है जिस पर अनेक छोटे-बड़े शिवलिंग स्थापित हैं। ऐसा बताया जाता है कि इनमें से अधिकांश शिव लिंग प्राचीन हैं जिन्हें आश्रम के सन्त महात्माओं ने स्थापित किया होगा। इनकी स्थापना कब और किसने की यह पता लगना कठिन है। परन्तु मन्दिर बनते समय इनमें से अधिकांश मूर्तियाँ जमीन के नीचे से निकली थीं और कुछ 'शिव लिंगों' को भक्तों ने बाद में श्रद्धापूर्वक स्थापित किया है। मन्दिर सुन्दर बना है। इसके रख-रखाव का समुचित व्यवस्था आवश्यक है।

अगस्त्येश्वर महादेव के गर्भगृह के पश्चिम ओर भूमि में बहुत नीचे तक गई एक मूर्ति है जिसका पता नहीं चल सका कि कितने नीचे तक वह है। लोग बताते हैं कि इनका नाम 'सुतीक्ष्ण मुनि' है। यह अगस्त्य ऋषि के शिष्य थे।

महादेव के दक्षिण ओर एक देवी की मूर्ति है। मन्दिर के पुजारी और अन्य वृद्ध लोग उसे लोपामुद्रा की मूर्ति बताते हैं। ऐसा लगता है कि आश्रम में ऋषि पत्नी के पातिव्रतधर्म का वर्णन स्वयम देवगुरु वृहस्पति जी ने किया था।

'श्री लोपा मुद्रा' के ऋषि के साथ दक्षिण चले जाने पर उनके शिष्यों ने यह 'पातिव्रता' की प्रतीक मूर्ति स्थापित कर उसका लोपामुद्रा नाम रखा होगा।

गोदावरी तीर्थ के उत्तर ओर गौतम ऋषि का आश्रम था जहाँ श्री गौतम ऋषि ने 'महादेव' की मूर्ति स्थापित की थी। वह आज भी 'गौतममेश्वर' नाम से प्रसिद्ध है। उसी प्रांगण में काशी नरेश के पूर्वजों ने अलग से एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें महाकाली एवं महादेव की मूर्ति स्थापित की है। दोनों मूर्त्तियाँ दर्शनीय एवं अतुलनीय (बेजोड़) हैं। महाराज काशी नरेश परम्परानुसार महाशिवरात्रि को यहाँ दर्शन करने अब भी आते हैं।

प्रातःस्मरणीय विद्वान्

अगस्त्य आश्रम में जहाँ पहले बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि एवं तपस्वी रहते थे वहीं वह शृंखला आज तक चली आ रही दिखाई दे रही है।

इस क्षेत्र के भूतपर्व विद्वानों ने काशी में अपनी कीर्तिध्वजा लहराई है उनमें से कुछ नाम इस प्रकार बताये जाते हैं:—महामहोपाध्याय पं० कैलाश चन्द्र शिरोमणि जी न्यायिक, पं० राममिश्र जी, पं० बटुकनाथ शास्त्री टोपले तथा इस क्षेत्र के समीप पं० प्रियानाथ भट्टाचार्य पं० प्रमथनाथ भट्टाचार्य, पं० हरिशास्त्री घोड़ेकर कर्मकाण्डी, पं० गौरी शंकर जी, पं० लक्ष्मी शंकर जी पं० रमाशंकर जी तान्त्रिक, पं० मार्तण्डशास्त्री घोड़ेकर तथा पं० ढुण्ढि राज जी थे। वर्तमान विद्वानों में पं०जागेश्वर जी पाठक ज्योषि, पद्मश्री वैद्यसम्राट पं० सत्यनारायणजी शास्त्री, पं० रामाकान्त जी पाठक कर्मकाण्डी, तथा पं गौरीनाथ जी पाठक आदि विद्वान इस 'अगस्त्याश्रम' की प्राचीन परम्परा को आज भी बनाये हैं। आप लोगों के दर्शन कर लोग अपने को धन्य मानते हैं। आप सब विद्वानों ने हमें आशीर्वाद दिये हैं।

इस क्षेत्र में शारदामठ, नरसिंहमठ और सरस्वतीगिरी का मठ था जो अब गृहस्थों के हाथों में जाकर 'गृहस्थ गृह' बन गये हैं।

इस अगस्त्याश्रम के समीप श्री शास्त्रार्थ महाविद्यालय अवस्थित है जिसके संचालक पण्डित प्रवर श्री पं० राजनारायण जी शास्त्री हैं। आपका भी आशीर्वाद हमें प्राप्त हो चुका है।

श्री काशी खण्ड' के सम्बन्ध में

पूज्यपाद १००८ श्री स्वामी करपात्री जी महाराज, महामहोपाध्याय पद्मभूषण पं० गोपीनाथ कविराज, भूतपूर्व राज्यपाल पद्मविभूषण माननीय श्री श्रीप्रकाश जी तथा भूतपूर्व राज्यपाल माननीय डा० सम्पूर्णानन्द जी ने 'श्री काशीखण्ड' के प्रथम भाग अध्याय ५६ व ६० का अवलोकन कर अपना आशीर्वाद एवं सम्मति निम्न भांति से दी है :—

पूज्य श्री १००८ स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज की दृष्टि में

सभी काशी निवासी भूतभावन भगवान विश्वनाथ के स्वरूप हैं। यह समझने के लिए काशी का स्वरूप ज्ञान और उसकी महिमा का ज्ञान होना आवश्यक है। महिमा ज्ञान के बिना स्वरूप ज्ञान भी सरस नहीं होता।

'स्कन्दपुराण' के 'काशीखण्ड' में काशी के 'स्वरूप', 'माहात्म्य' तथा उसके 'आधिदैविक 'स्वरूप' का विशेष वर्णन है। भाषा में प्रकाशित होने से यह जन-साधारण तक पहुच सकता है।

श्री वैकुण्ठनाथ उपाध्याय ने भाषा में 'काशीखण्ड' के प्रकाशन का उपक्रम कर प्रशंसनीय कार्य किया है। पुस्तक संग्रहणीय है।

महामहोपाध्याय पद्मभूषण पं० गोपीनाथ कविराज जी की दृष्टि में

पं० श्री वैकुण्ठनाथ उपाध्यायजी सम्पूर्ण काशीखण्ड के प्रकाशन को लेकर 'पञ्चनद' (पञ्चगंगाघाट) तथा 'बिन्दुमाधव' के विषय में ५९ तथा ६० अध्याय पहले प्रकाशित किये हैं। इस प्रसङ्ग में यात्रा का विवरण तथा कार्तिक माहात्म्य भी दिया गया है। आनुसाङ्गिक भाव से इस पवित्र भूमि में प्राचीन समय में जिन महापुरुषों का अवस्थान हुआ था उनका भी आंशिक रूप में विवरण दिया गया है साथ ही साथ 'बिन्दुमाधव' के मन्दिर तथा स्वामी ब्रह्मानन्द के मठ के

विषय में भी विवरण दिया गया है। उपाध्याय जी की हार्दिक इच्छा है कि २५ या उससे भी अधिक खण्डों में सम्पूर्ण काशी खण्ड का प्रकाशन करें। उनका यह प्रशंसनीय संकल्प यदि कार्य में परिणत हो सके तो धार्मिक जगत का कल्याणकारक एक महत अनुष्ठान सिद्ध होगा। 'ज्ञान क्षेत्र' काशी अति प्राचीन समय से ही भारतीय संस्कृति का मुख्यपीठ स्थान के रूप में सम्मानित हुआ है यह ऐतिहासिक सत्य है आध्यात्मिक काशी का रहस्य एकमात्र महायोगी ही जानते हैं परन्तु धर्मप्राण साधारण मनुष्य को बाह्यक्षेत्र का अवलम्बन करके ही शास्त्रोक्त आचरण के द्वारा अन्तर्जगत में प्रविष्ट होकर उर्ध्व में आराधन करना पड़ता है। इस समय 'जेनेवा युनिवर्सिटी' का सुप्रसिद्ध अध्यापक 'जिनहर्वर्ट' काशी की धार्मिक संस्थिति आदि के विषय में गवेषणामूलक एक विशालग्रन्थ के रचना में प्रविष्ट हुए हैं। मैं आशा करता हूँ कि उपाध्यायजी जनता के सहानुभूति के बल पर अपना महान संकल्प कार्य में परिणत करने में सफल होंगे। मैं यह भी आशा करता हूं कि काशीखण्ड के विवरण के साथ-साथ काशी का पौराणिक मानचित्र देने का वह प्रयत्न करेंगे। और और विषय में भी यथा सम्भव प्रयत्न करेंगे।

माननीय पद्मविभूषण श्री श्रीप्रकाश जी की दृष्टि में

स्कन्द पुराण के अन्तर्गत काशी खण्ड बहुत प्रतिष्ठित, प्रसिद्ध और लोकप्रिय रहा है। उसमें काशी के पुरातन मन्दिरों और उनके माहात्म्य का वर्णन है। इस खण्ड का हिन्दी अनुवाद पण्डित श्री नारायणपति त्रिपाठी ने ६५ वर्ष पहले किया था जो ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित भी हुआ था। उसका उतना प्रचार नहीं हुआ जितना होना चाहिए था।

मूल संस्कृत को तो उस भाषा के पण्डित ही पढ़ और समझ सकते हैं। हिन्दी भाषा में अनुवाद से अधिक लोगों का लाभ हो सकता है। मुझे हर्ष है कि पंडित वैकुण्ठनाथ उपाध्याय ने इस कार्य को फिर से हाथ में लिया है और काशीखण्ड

के विभिन्न अंगों का चलती हिन्दी में अनुवाद कर वे छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के के रूप में इन्हें प्रकाशित कर रहे हैं।

मैंने इनके अनुवाद को देखा है। इसकी भाषा सरल है और हिन्दी भाषा-भाषी ही नहीं, देश के अन्य भाषा-भाषी भी जो थोड़ी हिन्दी जानते हैं वे भी इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। जिन मन्दिरों का उपाध्याय जी की पुस्तिकाओं में वर्णन किया गया है उनके चित्र भी उन्होंने दिये हैं। साथ ही बहुत से मूल चित्रों को भी उन्होंने तैयार कराया है, जो इन पुस्तिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। इसके कारण यह रचना और भी आकर्षक हो गयी है।

'काशी' बड़ी पुरातन नगरी है, पर समय की गति से और नाना प्रकार के संघर्षों के कारण इसके पुराने मन्दिरों और भवनों को बड़ी क्षति पहुंचती रही। नये-नये मन्दिर और भवन बराबर बनते रहे जिसके कारण पुराणों की महिमा कम होती गयी और कितनी ही पुरातन सुन्दर मूर्तियों को लोग भूल गये।

एक प्रकार से इन पुस्तिकाओं में इन पुराने विस्मृत स्थानों का पुनरुद्धार किया गया है। उनके सम्बन्ध में जो कथाएं हैं वे भी विस्तार से बतलायी गयी हैं। उनका माहात्म्य भी समझाया गया है। बाहर वालों को ही नहीं, काशीवासियों को भी काशीखण्ड के हिन्दी अनुवाद से अपनी ही नगरी और इतिहास को जानने और उसकी परम्पराओं को समझने का इन पुस्तिकाओं द्वारा अच्छा अवसर मिलता है। मुझे आशा है कि इनका अच्छा प्रचार होगा और काशी के गौरव को बढ़ाने में और उसके इतिहास में गर्व लेने में इनसे अच्छी सहायता मिलेगी।

मैं श्री वैकुण्ठनाथ उपाध्याय को बधाई और धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने इस काम को हाथ में लिया और काशीको हमें अपने हृदयों में समुचितरूप से स्थापित करने की प्रेरणा दी।

माननीय डा० सम्पूर्णानन्द जी की दृष्टि में

आज से लगभग तीस पैंतीस वर्ष पहिले मैंने काशीखण्ड का हिन्दी अनुवाद पढ़ा था। अनुवादक स्वर्गीय पण्डित नारायणपति त्रिपाठी थे। पुस्तक के कई प्रसंग अब तक स्वभावतः न्यूनाधिक विस्मृत हो गये हैं परन्तु अब भी उसके कई

अंश स्मृति पटल पर ज्यों के त्यों अङ्कित हैं और उनकी गरिमा चित्त पर ज्यों की त्यों बनी हुई है। मुझे ऐसा लगा कि धर्म के विषय में उसमें उल्लेख्य बातों का गम्भीर चर्चा किया गया है और सर्वथा उपादेय है। अब इतने दिन बीत गये, विद्वानों के शोध ने बहुत सी ज्ञानसामग्री उपलब्ध कर दी है जिसका उपयोग होना चाहिए। अगस्त्य का दक्षिण अभियान स्वयं विचार की पर्याप्त सामग्री उपस्थित करता है। विन्ध्य और हिमालय की कथा केवल कहानी समझ कर भुलायी नहीं जा सकती। अभी इसी समय सरकारी ट्रेनिंग कालेज के अवकाश प्राप्त प्रिंसिपल पण्डित कुबेरनाथ शुक्ल एक बहुत ही रोचक और ज्ञानवर्धक विषय पर गम्भीर खोज कर रहे हैं कि यहाँ के प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर जैसे आदि विश्वेश्वर, विश्वनाथ, अन्नपूर्णा आदि पहिले कहाँ स्थित थे। उस समय इनमें की देव मूर्तियाँ किन नामों से प्रसिद्ध थीं और फिर किस क्रम से इनका स्थानान्तरण हुआ। इस शोध का जो बहुत थोड़ा सा विवरण मुझको ज्ञात हुआ है वह बहुत ही चित्ताकर्षक है। इन सब और अन्य बातों के समावेश होने से काशीखण्ड की कथा का महत्व बढ़ जायगा। यह ग्रन्थ प्राचीन काल का आज से कई सौ वर्ष पहिले की उस प्रकार की पुस्तक है जिसको आजकल 'डाइरेक्टरी' कहेंगे। नयी सामग्री से मिलाने से प्राचीन और अर्वाचीन की कड़ी मिल जायगी और पुस्तक की उपयोगिता कई गुना बढ़ जायगी। इन विचारों से प्रेरित होकर पण्डित वैकुण्ठनाथ उपाध्याय ने काशी खण्ड का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। उनका विचार सर्वथा अभिनन्दनीय है। मैं आशा करता हूँ कि पुस्तक शीघ्र निकल सकेगी और विद्वत समाज में आदर को प्राप्त होगी। इतना कहने के बाद में उपाध्यायजी से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। वह नवीन सामग्री से काम लेने के पहिले इतना देख लें कि जो कुछ नवीन है वह सब संग्रह करने के योग्य नहीं हैं। इस पुस्तक को आजकल के पाठकों के सामने जाना है। आजकल के पाठक की दृष्टि में हर पुरानी चीज समान रूप से उपादेय नहीं होती। भले ही उसकी दृष्टि को हम दूषित कहें परन्तु क्या किया जाय काम तो उसी से लेना है। काशीखण्ड में व्रतादि का जो

विधान है उसमें से कुछ निश्चय ही ऐसी हैं जो आजकल के मनुष्य के काम की नहीं है जिसको वह निबाह भी नहीं सकता । एक और बात है । मेरे सामने ५९ वां और ६० वां अध्याय है । मैं जो कुछ आलोचना कर रहा हूं उसका यही आधार है । मैं कहना यह चाहता था कि जो चित्र दिये गये हैं उनमें से कुछ न भी दिये जाते तो कोई क्षति नहीं थी । यह चित्र तो कल्पित हैं । प्राचीन काल के ऋषियों मुनियों के चित्र कहीं उपलब्ध नहीं होते परन्तु इन चित्रों की जगह यदि कुछ मानचित्र (नक्शे) दिए जाते तो बड़ा उपकार होता क्योंकि अब धीरे-धीरे इन स्थानों के भौगोलिक स्थिति में परिवर्तन आ रहा है । इमारतें कुछ ढह गयीं हैं, कुछ ढह जायँगी और अनतिदूर भविष्य में इनमें से कुछ को पहिचानना कठिन हो जायगा । इस प्रकार की जो पुस्तकें होती हैं उनकी एक मानक (स्टैंडर्ड) आकृति होती है जिसमें पुस्तकें देखने में अच्छी लगती हैं और उनकी रक्षा करने में सहायता मिलती है । आशा है कि उपाध्या जी भी इस बात को ध्यान में रखें ।

— —

मातान्नपूर्णेश्वरी

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलघोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी ।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥

नानारत्नविचित्रभूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी
मुक्ताहारविलम्बमानविलसद्वक्षोजकुम्भान्तरी ।
काश्मीरागरुवासिता रुचिकरी काशीपुराधीश्वरी ॥
भिक्षां देहि कृपा० ॥

योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थनिष्ठाकरी
चन्द्रार्कानलभासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी ।
सर्वैश्वर्यसमस्तवाञ्छितकरी काशीपुराधीश्वरी ॥
भिक्षां देहि कृपा० ॥

कैलासाचलकन्दरालयकरी गौरी उमा शङ्करी ।
कौमारीनिगमार्थगोचरकरी ओङ्कारबीजाक्षरी ।
मोक्षद्वारकपाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी ॥
भिक्षां देहि कृपा० ॥

दृश्यादृश्यप्रभूतवाहनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी
लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपांकुरी ।
श्रीविश्वेशमनःप्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी ॥
भिक्षां देहि कृपा० ॥

उर्वी सर्वजनेश्वरी भगवती मातान्नपूर्णेश्वरी
वेणीनीलसमानकुन्तलहरी नित्यान्नदानेश्वरी ।
सर्वानन्दकरी दशाशुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपा० ॥

आदिक्षान्तसमस्तवर्णनकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी
काश्मीरा त्रिजलेश्वरी त्रिलहरी नित्यांकुराशर्वरी ।
कामाकांक्षकरी जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपा० ॥

देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी
वामं स्वादुपयोधरप्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी ।
भक्ताभीष्टकरी दशाशुभकरी काशीपुराधीश्वरी ॥
भिक्षां देहि कृपा० ॥

चन्द्रार्कानलकोटिकोटिसदृशा चन्द्रांशुबिम्बाधरी
चन्द्रार्काग्निसमान कुन्तलधरी चन्द्रार्कवर्णेश्वरी ।
मालापुस्तकपाशसांकुशधरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपा० ॥

क्षत्रत्राणकरी महाऽभयकरी माता कृपासागरी
साक्षान्मोक्षकरी सदाशिवकरी विश्वेश्वरी श्रीधरी ।
दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपा० ॥

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शङ्करप्राणवल्लभे ।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति ॥
माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः ।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥

——

भूताधिपं भुजगभूषणभूषिताङ्गं व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम् ।
पाशांकुशाभयवरप्रदशूलपाणिं वाराणसीपुरपतिं भज० ॥
शीतांशुशोभितकिरीटविराजमानं भालेक्षणानलविशोषितपञ्चबाणम् ।
नागाधिपारचितभासुरकर्णपूरं वाराणसी० ॥
पञ्चाननं दुरितमत्तमतङ्गजानां नागान्तक दनुजपुङ्गवपन्नगानाम् ।
दावानलं मरणशोकजराटवीनां वाराणसीपुर० ॥
तेजोमयं सगुणनिर्गुणमद्वितीयमानन्दकन्दमपराजितमप्रमेयम् ।
नागात्मकं सकल निष्फलमात्मरूपं वाराणसी० ॥
आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां पापेरतिं च मुनिवार्यमनः समाधौ ।
आदाय हृत्कमलमध्यगतं परेशं वाराणसीपुर० ॥
रोगादिदोषरहितं स्वजनानुरागवैराग्यशान्तिनिलयं गिरिजासहायम् ।
माधुर्यधैर्यसुभगं गरलाभिरामं वाराणसी० ॥
वाराणसीपुरपतेः स्तवनं शिवस्य व्याख्यातमष्टकमिदं पठते मनुष्यः ।
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ॥
विश्वनाथाष्टकमिदं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥

११,५०० श्लोकों से पूर्ण १०० अध्याय के काशी-खण्ड का लगभग २५ भाग, सचित्र हिन्दी भाषा में प्रकाशित हो रहा है। सम्पूर्ण अंकों को प्राप्त करने के लिए १) रु० जमा कर स्थायी ग्राहक बनें और अपनी प्रति सुरक्षित कर लें।

जमा धन अन्तिम पुस्तक के मूल्य में बाद कर दिया जायेगा स्थायी ग्राहकों को मूल्य में प्रति पुस्तक ५ पैसा छूट होगा।

———

प्रकाशक

श्रीभृगु प्रकाशन

के० ४३।६३ बंगाली बाड़ा, विश्वेश्वर गंज, वाराणसी